उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

DIPLOMA IN MEDICAL ASTROLOJY

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा

पाठ्यक्रम कोड़ –DMA-20

चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025

Operator : 05946-286000

Admissions : 05946-286002

Book Distribution Unit : 05946-286001

Exam Section : 05946-286022

Fax : 05946-264232

Website : http://uou.ac.in

अध्ययन मण्डल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रो0 देवीप्रसाद त्रिपाठी, कुलपति
उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय
अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,वाराणसी
प्रो0 रामराज उपाध्याय
अध्यक्ष, पौरोहित्य विभाग, श्री ला.बा.शा.क्रे.स.वि.वि. नई दिल्ली

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 नन्दन कुमार तिवारी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ए.सी. ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सम्पादक

डॉ 0 प्रभाकर पुराहित
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

सह सम्पादन

डॉ 0 नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन **खण्ड एवं इकाई संख्या**

प्रो. देवीप्रसाद त्रिपाठी जी
कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखंड
डॉ. प्रभाकर पूरोहित
सहायकाचार्य, ए.सी ज्योतिष - विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ. नीरज कुमार जोशी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ए.सी. संस्कृत विभाग
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी , नैनीताल

प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक - चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त

मुद्रक :
प्रकाशन वर्ष : 2022

नोट:- यह पुस्तक छात्र हित में शीघ्रता के कारण, प्रकाशित की गयी है। संशोधित व परिवर्द्धित संस्करण का प्रकाशन पाठ्यक्रम के पूर्ण लेखन व सम्पादन के पश्चात् किया जायेगा। इसका उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखितअनुमति के बिना अन्यत्र किसी भी रूप में नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड-01 ज्योतिष शास्त्र परिचय पृष्ठ संख्या

इकाई-01 सृष्टि एवं व्रह्माण्ड का अन्त: करण सम्बन्ध

इकाई-02 ज्योतिष एवं आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध

इकाई-03 चिकित्सा ज्योंतिष का परिचय एवं प्रयोजन

इकाई-04 मानव जीवनपर ग्रहों का प्रभाव

इकाई-05 ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योंतिषीय प्रतिधि

इकाई-06 रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण

खण्ड -02 रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त

इकाई-01 रोग परिचय

इकाई-02 पुनर्जन्म परम्परा

इकाई-03 कर्मफल / भाग्य फल सोदाहरण परिचय

इकाई-04 प्राचिन पद्धतियों में रोग विचार

इकाई-05 रोगों का साध्य असाध्यता

इकाई-06 रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय कारण

खण्ड -03 आयुर्वेदीय दृष्टि से रोग परिचय

इकाई-01 आयुर्वेदाचार्यों के मत

इकाई-02 चिकित्सा के भेद

इकाई-03 कारण रोग

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा
प्रथम पत्र –DMA-20
खण्ड 1
चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त

इकाई-1 सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का अन्त:करण सम्बन्ध

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 विषय रिचय
1.4 ब्रह्माण्ड
1.5 सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड
1.6 ब्रह्माण्ड ऊर्जा का स्पन्दन
1.7 बोधात्मक प्रश्न
1.8 सारांश
1.9 पारिभाषिक शब्दाबली
1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष{**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का अन्त:करण सम्बन्ध है"**| वैदिक दर्शनों में **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे"** का सिद्धांत प्रचीन काल से प्रचलित है | यह सिद्धांत बताता है, कि सौर जगत में सूर्य ,चन्द्र आदि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों वा क्रियाकलापों में, जो नियम काम करते हैं ,ठीक वैसे ही नियम जीवमात्र के शरीर में स्थित सौर – जगत की इकाईयों का संचालन करते हैं |

इस सिद्धान्तों को अच्छी तरह जानने और पहचानने के लिए हमें प्राणी और पदार्थ की आंतरिक संरचना के आधार पर ध्यान देना चाहिए | प्रत्येक प्राणी एवं पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्राथमिक संरचना का आधर परमाणु है | यह देखने में अतिसूक्ष्म किन्तु सौर जगत के समान आकार – प्रकार वाला होता है | इसके मध्य में एक धन विद्युत बिंदु होता है , जिसे केंद्र कहते हैं | इसका व्यास एक इन्च के दशलाखवेंभाग का भी दशलाख भाग होता है | परमाणु के जीवन जीवन का सारतत्व इसी केंद्र में रहता है | इस केंद्र के चारोंओर और अनेक सुक्ष्मातिसुक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते रहते हैं और इस प्रक्रिया में वे सौर जगत के प्रत्येक क्रिया – कलाप का अनुकरण करते हैं | इस प्रकार के अनन्त परमाणुओं के समाहार से पंचमहाभूत के माध्यम से कोशिकाएं और इन कोशिकाओं के द्वारा हमारा शरीर बनता है | हमारे शरीर की कोशिकाएं बन्धुता नियम के अनुसार दलबद्ध होकर शरीर के ऊतकों और उनके उनके द्वारा अंग बनाती है , जिनके परस्पर मिलने से हमारा भौतिक- शरीर बनता है | इस प्रकार जब हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव उन कोशिकाओं से बने हैं, जो सौर जगत के क्रिया- कलापों का अनुकरण करते

हैं , - तो अनायास ही समझ में आ जाता है, कि इन कोशिकाओं द्वारा बना शरीर भी सौर जगत की गति- बिधियों का अनुकरण करता है |

प्रथम दृष्टि में सम्भवत: यह विश्वाश करना हमारे लिए कठिन हो सकता है , की हमारी और ग्रह – नक्षत्रों के बीच कोई सीधा एवं सतत सम्पर्क या आदान- प्रदान है | किन्तु हमें यह बात नजरों से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत् एवं ब्रह्माण्ड – रश्मियों द्वारा हमारे सौर जगत में स्थित ग्रह- नक्षत्र पिंडों से सीधा एवं सतत्त सम्पर्क है , जिनकी रासायनिक गति निरंतर परिवर्तित होती हुई हम पर सतत एवं निरंतर प्रभाव डाल रही है | यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है , कि ब्रह्माण्ड एवं उसके वासियों के वीच सतत्त एवं सहज सम्बन्ध मानने का पूरा श्रेय भारतीय महर्षियों को जाता है , जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर ज्योतिष एवं योग शास्त्र के सुमान्यसिद्धांतों का प्रतिपादन किया | इसी सन्दर्भ में **"सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का अन्त:करण सम्बन्ध "** के बारे में हम प्रस्तुत इकाई में विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे

1.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ज्योतिष शास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे एवं ज्योतिष शास्त्र के महत्व से अवगत होंगे।
- ज्योतिष शास्त्र में सृष्टि विषयक तथ्यों से अवगत होंगे।
- सृष्टि एवं व्रह्मांड के स्वरुप से परिचित हो पायेंगे
- दोनों के कार्य-कारण सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- सृष्टि और व्रह्मांड का परस्पर क्या सम्बन्ध है जान पायेंगे।
- व्रह्मांड में घटित घटनाओं के शुभाशुभ फल को ज्ञात कर पायेंगे |

1.3 विषय परिचय

सृष्टि एवं ब्रह्मांड का अंत: करण सम्बन्ध समझने के लिए सर्व प्रथम सृष्टि और ब्रह्मांड क्या है इसको समझना होगा | यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत सृष्टि के उष: काल में अव्यक्त से प्रकट होता है ,और उसी अव्यक्त की सत्ता में महारात्रि के आते ही विलीन हो जाता है | भारतीय चिंतन धारा के अनुसार चतुर्दश लोकों की समष्टि का ही नाम ब्रह्मांड है | जिसका नियमन सत्य लोक से होता है | ये लोक भौतिक शरीर के लिए अगम्य हैं | इन लोकों में गमन सूक्ष्म शरीर से ही सम्भव है | आधुनिक विज्ञान के अनुसार जहाँ हजारों लाखों आकाश गंगायें भ्रमण एवं प्रसरण शील हैं उसे ब्रह्मांड कहा जता है | एक अर्थ में हम इसे अन्तरिक्ष भी कह सकते हैं क्योकि **" अन्तर्मध्ये ऋक्षाणिनक्षत्राणि यस्य तदन्तरिक्षमिति"** अर्थात जसके मध्य में ग्रह ,नक्षत्र,तारे एवं तारे समूह विद्यमान रहते हैं उसे अन्तरिक्ष कहते हैं | कुछ लोगों ने इस आधार पर अन्तरिक्ष को ही ब्रह्माण्ड कह दिया परन्तु ब्रह्माण्ड तो उसे कहा जायेगा जिसमें अन्तरिक्ष के सहित समग्र दृश्य जगत विद्यमान है | इसका स्वरूप कैसा है बड़ा है आदि का उत्तर कैसे दिया जा सकता है क्योंकि हम इसीमें विद्यमान हैं जिधर भी देखते हैं उधर अनन्त और अपार दिखाई देता है | इसलिए वेदों में **"अनन्तोऽस्प्पारोऽसि"** कहागया है तथापि चिन्तनधारा में संलग्न मनीषियों ने वैदिक काल से ही इसे दीर्घ – वर्तुलाकार पिण्ड के रूप में स्वीकार किया है | ब्रह्मांड शव्द ही अपने अण्डाकार होने का बोध कराता है | वैदिकोतरकालीन खगोलविद भाष्कराचार्य ने ब्रह्मांड को कड़ाहस्म्पुटकार माना है | इनका कहना है कि जैसी आकृति दो विराट कडाहों को मिलाकर बनती है उसी आकार में ब्रह्मांड भी होना चाहिए |आज के विज्ञान के नूतन ज्ञान के अनुरूप हमारी पृथ्वी सौर –परिवार की एक सदस्या है | इस सौर – परिवार का अधिपति अथवा नियामक हमारा सूर्य है जिसके कारण हमारे परिवार के सभी साथी ग्रह गतिमान है | अत: सूर्य हमारी धुरी है, न चाहते

हुए भी हमें इस धुरी के चतुर्दिक घूमना ही होगा क्यूंकि इसी भ्रमण में हमारे जीवन का अस्तित्व है | हमारा सूर्य भी अपनी आकाश गंगा स्वयं प्रसरणशील अथवा गतिशील है? इनमें से यदि किसी की भी गति में अवरोध आया तो उसका विनाश निश्चित ही है | अत: यह सिद्ध है कि गति में ही जीवन का अस्तित्व है |

भारतीय चिन्तन के अनुसार ' भूलोक' ही पृथ्वी है | भू लोक स्वर्लोक पर आधारित है अर्थात 'स्व:' लोक को सूर्यलोक कहा गया है |सम्प्रति इसी धाता लोक को ही काश्यपी निहारिका के नाम से जाना जाता है | अत: कह सकते हैं कि स्वलोक की धुरी जन लोक तथा जन लोक की धुरी सत्यलोक है | इस आधार पर यह सिद्ध होता है कि सत्य ही सबकी मूल धुरी है क्यूं कि सत्यलोकपर जनलोक का , जनलोक पर स्वलोक का तथा स्वलोक पर भूलोक का अस्तित्व विद्यमान है | इस असीम ब्रह्माण्ड के रहस्यों का ज्ञान हमें तब हो पायेगा जब हम उस नियामक तत्व के समीप पहुँचने की बात करेंगे परन्तु क्या भौतिक शरीर से वहाँ तक पहुँचना आज तक के भौतिक ज्ञान की दृष्टि से सम्भव है ? अभी तो हमें अपने सौर परिवार का ही पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाया | पहले हमको सौर परिवार से बाहर निकला होगा ; उसके पश्चात आकाशगंगा से तब सम्भवत: हमें इस विश्व का कुछ अंश समझ में आसकता है | आकाश गंगा से बाहर निकलने का अभिप्राय है सत्य लोग के निकट पहुँचने की यात्रा | क्या यह सम्भव है ? यह तभी सम्भव है जब प्रकाश की गति से चला जाए | आइन्स्टीन के सापेक्ष सिद्धांत के अनुसार प्रकाश के वेग से यात्रा करने पर बहुत से मनोरंजक परिणाम सामने आएँगे | इसी तरह की एक कथा पुराणों में राजा रेवतक की पुत्री रेवती के विवाह प्रसंग के सन्दर्भ में मिलती है | अंतिम निष्कर्ष यह है कि भौतिक शरीरसे यह सब अभी बहुत दूर है | अर्थात यह कह सकते हैं कि असम्भव हैं इसलिए हमारे ऋषि – महर्षियों ने अवांतर लोकों का ज्ञान स्थूल शरीर से नहीं अपितु सूक्ष्म शरीर से प्राप्त किया परन्तु सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध

भौतिक शास्त्र से नहीं अपितु अपितु आध्यात्मिक जगत से है , आध्यात्म जगत का प्रारम्भ बिंदु ही भौतिक का अंतिम विन्दु है | इसलिए आध्यात्म विद्या सामान्य के लिए अगम्य है | आध्यात्म के सम्यक ज्ञान के लिए सर्व प्रथम भौतिक ज्ञान आवश्यक है | इसलिए किसी भी वस्तु के समग्र ज्ञान के लिए सर्वप्रथम आधिभौतिक प्रक्रिया का ही महत्व होता है इसके पश्चात आदि दैविक और आध्यात्मिक का कर्म आता है | इन तीनों प्रविधियों के बाद ही किसी वस्तु अथवा पिण्ड का समग्र ज्ञान हो सकता है |

1.4 **ब्रह्माण्ड:-**

आकाश में एक प्रकाश पुंज दिखाई देता है जिसकी आवश्यकता हमको अधिक मालूम पड़ती है | प्रात: एवं सायं काल में हम इसको भलीभांति देख पाते हैं परन्तु यदि मध्यान्ह काल में इसको देखने का दुस्साहस किया जाय तो हमें अपनी आँखें खोनी पड़ सकती हैं| जब इसको हमने क्षितिज पर ठीक ढंग से देखा तो यह हमको कुछ लाल व बड़ा दिखाई दिया , धीरे-धीरे वह चमकता हुआ प्रकाश पुंज हमारी आँखों से विलीन हो गया और काली घटा घिर आई, कुछ दिखाई नहीं देता है अर्थात रात्रि हो गई | जहाँ हमको प्रकाश की आवश्यकता हो रही है वहीँ आकाश की और जब दृष्टि करते हैं तो दिखाई दे रहा है कि एक नीली चादर पर कई प्रकाश बिंदु बिखरे हुए हैं | इतनेमें इनके साथ ही एक प्रकाश का गोला उदित होता दिखाई दे रहाहै| परन्तु बड़ा मनोहर लग रहा है | क्या है ये प्रकाश बिन्दु ? रात भर इन बिन्दुओं को देखते हैं तो मालूम होता है कि ये बिंदु अपना स्थान बदल रहे हैं | देखते- देखते ऊषा काल होने लगा, सारे प्रकाश बिंदु विलीन हो गये, और पूर्व दिन वाला ही पुंज {बिम्ब} निकल पड़ा, जिसको हम आदित्य , सविता{ सूर्य} आदि कही नामों से जानते हैं | इसका उद्भव कैसे हुआ ? ये दिखाई देने वाले प्रकाश बिंदु कहाँ हैं ? कैसेहैं? इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लग जाती है |

" न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम|

नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्नि: ||''

इस उक्ति से ज्ञात होता है कि वह क्या है ? कोन है ? कहाँ है ? जिस तक हमारे विशाल तेज पुंज , सूर्य चन्द्र एवं तारों का ही प्रकाशसमग्र रूप से नहीं पहुँच पाता है | जब सूर्य , चन्द्र एवं तारों का प्रकाश वहाँ नहीं पहुँच पाता है तो क्या विद्युत् और अग्नि का प्रकाश पहुँच पाएगा ? नहीं कदापि नहीं | तो फिर जिज्ञासा होती है कि क्या है वह ? वही तो ब्रह्माण्ड , जहाँ एक नहीं लाखों सूर्य हैं, परन्तु फिर भी मालूम नहीं कि उसका आदि अंत कहाँ है ? इस सम्बन्ध में तैतिरीय ब्रहामण नामक ग्रन्थ में पुन:कहा गया है कि **" को अद्वा वेध क इह प्रवोचत| कुत आजाता कुत इयं विसृष्टि:"** इत्यादि | इस ऋचा में कहा गया है कि सृष्टी किस से उत्पन्न हुई है तथा किसलिए सृष्टी कि उत्पति हुई , इसको कोन जानता है अथवा कोन बता सकता है ? जिन्हें हम देवता ,ऋषि अथवा अवतार कहते हैं वे भी पीछे ही हुए | केवल आकाश ही एक ऐसा है जो परमाध्यक्ष है,वही जानता है ,परन्तु वह भी उसको जानता या नहीं इसको कोनजानता है ? सृष्टि के विषय में जितने सम्प्रदाय { जिसे आज हम धर्म के नाम से जानते } हैं उतने विचार भी हैं | इस सन्दर्भ में छान्दोग्य उपनिषद में एक कथा है कि गहन चिंतन में लीन ब्रह्मा से एक नैसर्गिक विराट अण्ड उत्पन्न हुआ | वहथा ब्रह्माण्ड{ब्रह्म + अण्ड}वर्ष भर अण्ड बढ़ता रहा और एक दिन टूट कर दो भागों में विभक्त हो गया | इसके रुपहले भाग से बनी पृथ्वी और सुनहरे भाग से आकाश | अन्डे की सफेदी से पर्वत { पहाड़} का जन्म हुआ और झिल्ली से बादल बने | तरलपदार्थों से सागरों का जन्म हुआ आदि | ईसाइयों के धर्मग्रन्थ बाईबल के अनुसार स्वयं परमपिता परमेश्वर ने अपने हाथों से 6 दिन में सृष्टि की रचना की | इस्लाम के धर्म ग्रन्थ कुरान के मत में – अल्लाह ने आसमानों और पृथिवी को 6 दिनों में उत्पन्न किया आदि "| तैतरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि पहले जल था उसके वाद पृथ्वी की उत्पत्ति हुई| इस प्रकार के बहुत विचार मिलते हैं

जो कि कुछ तो अनुमान प्रमाणों से दूर होने के कारण असत्य समझे जाते हैं और कुछ सत्य | सत्य और असत्य में दार्शनिक दृष्टि से विचार करें तो ज्यादा अंतर जान नहीं पड़ता है | यह ऐसा अंतर है जैसे प्रकाश और अन्धकार | प्रकाश को किसने बताया कि यह प्रकाश है , जब अन्धकार रहा तभी तो हम प्रकाश को जान सके | एक बिंदु के समाप्त होते ही दुसरा बिन्दु अपने आप समाप्त हो जाता है | एक की साहयता के लिए दुसरे का रहना आवश्यक हो जाता हैनहीं तो बात समझ में नहीं आती कई सारे असत्य बिंदु ही सत्य तक पहुंचाते हैं |

वेदान्त में कहा गया है कि ' **तम:प्रधान विक्षेपशक्तिम्द्ग्यानोपहितचेतन्यादाकाश आकाशद्वायुर्वायोरग्नि अग्नेरापोऽदभ्य: पृथ्वी चोत्पद्यते इत्यादि** 'अर्थात कहते हैं कि तम प्रधान विक्षेपशक्ति मद ज्ञानोपहित चैतन्य से आकाश , आकाश से वायु ,वायु से अग्नि , अग्नि से जल , जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई | प्रलयावस्था में पृथिवी जल में जल अग्नि में अग्नि वायु में और वायु आकाश में लय होते जायेंगे परन्तु विज्ञान कहता है कि जल , पृथ्वी, तेज के परमाणु आकाश में सदा विद्यमान रहेंगे |

1.5 सृष्टि एवं ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध –

वैदिकदर्शनों में " **यथा पिण्डे तथा ब्रह्मांडे**" का सिद्धांत सुदूरतम प्राचीनकाल से प्रचलित है | यह सिद्धांत बताता है कि सौर जगत में सूर्य , चन्द्र आदि ग्रहों की विभिन्न गति विधियों एवं क्रिया - कलापों में जो नियम काम करते हैं , ठीक वे ही नियम प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते हैं |सौर जगत में स्थित ग्रहनक्षत्र के पिण्डों के साथ हमारा सतत सम्बन्ध तथा उनकी गति स्थिति एवं रासायनिक परिवर्तनों के अनुरूप हमें प्रभावित करता रहता है | इस प्रसंग में जलवायु के परिवर्तन को साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है | वस्तुत: जलवायु का परिवर्तन सूर्य एवं सौरपरिवारीय ग्रहों की राशि विशेष में गति अथवा हमसे निकट या दूर में स्थित

के कारण होता है | ग्रीष्म ऋतू में वृष या मिथुन राशि में स्थित सूर्य की किरणों में प्रचण्डता तथा हेमन्त ऋतू में वृश्चिक या धनु राशि में स्थित सूर्य की किरणों में मृदुता का हेतु पृथ्वी एवं सूर्य का आसन्न्त्व–दूरत्व भाव है | तात्पर्य यह है कि ग्रीष्म ऋतू में सूर्य हमारे निकट होता है तथा हेमन्त ऋतू में हमसे दूर | जब वह हमारे निकट होता है तब हम उसके कारणों में प्रचण्डता और जब वह हमसे दूर होता है तो हम स्वाभाविक रूप से उसकी किरणों में मृदुता का अनुभव करते हैं | सूर्य की तेज किरणों से वाष्पीकरण होने के कारण वर्षा तथा उसकी मात्रा भी पूर्ण रूपेण सूर्य पर आधारित रहती है | फलत:जलवायु में जो परिवर्तन होता है, तथा इस परिवर्तन का मानव जीवन पर जो प्रभाव पड़ता है , वह एक प्रकार से हमारे सौर जगत या सौर – परिवार के ग्रहों का ही प्रभाव माना जायेगा |

आज के वैज्ञानिक युग में मानव एवं अन्य प्राणियों पर ग्रहों के प्रभाव में आस्था रखें या न रखें ; किन्तु वे इस बात से आश्चार्यान्वित हुए विना नहीं रह सकते कि समुद्र की समतलता में, वायुमंडल के दबाव में, ऋतुओं के परिवर्तन में तथा भूकम्प आदि के आवृतियों में जो घटनाक्रम दिखाईए दे रहा है , उसका सूर्य एवं चंद्रमा की गति स्थिति के साथ सीधा सम्बन्ध है | पूर्णिमा एवं आमावस्या को समुद्र के अन्दर ज्वार भाटे की लहरें बहुत बड़ी हो जाती है , वायुमंडल में भी अन्य अवसरों की अपेक्षा अधिक संक्षोभ पैदा होता है या भूकम्प के झटके लगते हैं | आखिरकार ऐसा क्यूँ होता है ? इसलिए कि जब आकाश मण्डल में सूर्य एवं चन्द्रमा पास-पास होते हैं – जैसा कि आमावस्या को , अथवा जब वे एकेत्तर से ठीक विपरीत दिशा में होते हैं – जैसे कि पूर्णिमा को, तो वे अपने आकर्षण – विकर्षण द्वारा समुद्र की समतलता में, वायुमंडल में तथा भूमि के संतुलन में एक विलक्षण संक्षोभ पैदा कर देते हैं | जिनके प्रभाववश ज्वार- भाट्टा तूफ़ान या भूकम्प जैसी धटनाएं घटित होतीहै | जिसके फल स्वरूप पूर्व और पश्चिम के लोगों

की अथवा उत्तर- एवं दक्षिण के लोगों की जीवन शैली में जो अन्तर पाया जाता है , वह मात्र खान-पान के भेद या जाती अथवा संस्कृति के भेद के कारण नहीं है अपितु यह भेद जलवायु की भिन्नता के कारण है| जलवायु की दशाओं तथा इसके परिवर्तन का मनुष्य के परिवर्धन , जीवन शक्ति , जीवन –क्षमता, अपराध , वृत्ति समृधी, स्वास्थ्य आदि पर सीधा प्रभाव पड़ता है ; और चूँकि जलवायु का यह परिवर्तन एवं उसकी विविधता के माध्यम से पड़ने वाला प्रभाव एक प्रकार से ग्रहों का ही प्रभाव है | इस प्रकार से ब्रह्मांड का और सृष्टि का परस्पर अन्त: करण सम्बन्ध स्पष्ट होता है |

1.6 ब्रह्माण्ड में ऊर्जा का स्पन्दन

हमारा ब्रह्माण्ड असीम ऊर्जा से युक्त है, इसी ऊर्जा के परिणामस्वरूप ब्रह्माण्ड में सृष्टि होती है। स्पन्दनशील सिद्धान्त के अनुसार माना जाता है कि इस असीम ऊर्जा का कोई एक केन्द्र भी निश्चित ही होगा। वह केन्द्र ही विस्तार और संकुचन की प्रक्रिया को संचालित करता है। स्पन्दनशील सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड विस्फोट की एक अनन्त शृंखला में विस्तार प्राप्त करता है और संकुचित भी होता है। विस्तार और संकुचन का यह स्पन्दन स्वाभाविक रूप ब्रह्माण्ड के आन्तरिक गुणों और ऊर्जा के कारण ही होता है। ब्रह्माण्ड के विकास के केन्द्र में ऊर्जा के रूपान्तरण की एक अन्तहीन प्रक्रिया है, इसलिए ब्रह्माण्ड को किसी बाहरी हस्तक्षेप की भी आवश्यकता नहीं है। मेटागैलेक्सी अर्थात् ब्रह्माण्डीय पदार्थों का समूह एक गतिशील प्रणाली है । कोई भी गतिशील प्रणाली ऊर्जा के संतुलन से ही स्थिर रहती है और गुरुत्वाकर्षण के बल से वह संचालित होती है। गुरुत्वाकर्षण को भी एक प्रकार की ऊर्जा के रूप में जाना जाता है, जो अपनी ओर खींचती है। यही गुरुत्वाकर्षणीय ऊर्जा ब्रह्माण्ड को भी संतुलित किए हुए है । अतःब्रह्माण्ड का स्पन्दन ऊर्जा की संतुलित प्रक्रिया का परिणाम है।

1.7 बोधात्मक प्रश्न -

1.भारतीय चिन्तन के अनुसार ' भूलोक' ही |

क. पृथ्वी है

ख .आकाश है

ग. द्युलोक

घ. कोई नहीं

2.तैतरीय ब्रहामण के अनुसार सबसे पहले किस तत्व की उत्पत्ति हुई |

क. आकाश

ख.जल

ग.अग्नि

घ. वायु

च.पृथ्वी

3.हमारा शरीर भी सौर-जगत की गति-विधियों का अनुशरण करता है

क.सत्य

ख.असत्य

4. पूर्णिमा एवं आमावस्याको समुद्र के अन्दर ज्वार भाटे की लहरें बहुत बड़ी हो जाती है

क.सत्य

ख.असत्य

1.8 सारांश –

इस इकाई के अन्तर्गत हमने जाना कि किस प्रकार हमारे व्रह्मांड में विद्यमान अनेक पिण्ड ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव से पड़ने वाला प्रभाव समस्त चरा – चर जगत को प्रभावित करता है | साथ ही ये भी जाना की कैसे पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति हुई | नासदीयसूक्त

में वर्णन मिलता है कि सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था पश्चात् स्वयमेव शुद्धचैतन्य परब्रह्म की सत्ता उत्पन्न हुई। इसी परब्रह्म ने संकल्पमात्र से सृष्टि की रचना की। सृष्टिरचना में सर्वप्रथम सत्य की उत्पत्ति हुई तत्पश्चात् क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी उत्पन्न हुए। ब्रह्मा का वर्णन श्रीमद्भागवतमहापुराण में भी प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत के अनुसार भगवान विष्णु के मन में सृष्टि की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् भगवान विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। इसी ब्रह्मा ने सम्पूर्ण सृष्टि की रचना की। ब्रह्माण्डपुराण के अनुसार ब्रह्मा ने सर्वप्रथम हिरण्याण्ड को उत्पन्न किया, इस हिरण्याण्ड का आवरण जल था। जल का तेज, तेज का वायु, वायु का आकाश क्रमशः आवरण थे, इन पञ्चमहाभूतों का आवरण महत्तत्व था, तथा महत्तत्त्व अव्यक्त से आवृत्त था। कुछ इसी प्रकार का वर्णन तैत्तिरीयोपनिषद् में भी मिलता है। पौराणिक साहित्य देखने पर हमें प्राप्त होता है कि ब्रह्मा इस सम्पूर्ण सृष्टि के कर्ता है। पौराणिक साहित्य में ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन त्रिदेवों की कल्पना इसी सन्दर्भ में की गई है। त्रिदेवकल्पना में सत्व-रज-तम इन तीन गुणों के अनुरूप ब्रह्मा रजोगुणयुक्त होकर विश्व का सृजन करता है, विष्णु सत्त्वगुणसम्पन्न होकर होकर सृष्टि का पोषण करते हैं तथा शिव तमोगुणयुक्त स्वरूप धारण कर सृष्टि का नाश करते हैं। यहाँ ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता, विष्णु को पालनकर्ता तथा शिव को संहारकर्ता के रूप में रखा गया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार प्रायः ब्रह्मा ही सृष्टिकर्ता हैं, उन्हीं से यह सृष्टि उत्पन्न हुई है।

1.9 पारिभाषिक शव्द

जिज्ञासा	- जानने की इच्छा
विमर्श	- विचार-चिन्तन
गूढतम	- अत्यन्त रहस्यमयी

अबूझ - अनसुलझी

रचयिता - रचना करने वाला

व्यापकता - अधिक विस्तार सीमा

वैदिक ऋचा - वेदों के मन्त्र

साम्यावस्था - स्थिर अवस्था

खगोलविद - ब्रह्माण्ड विज्ञानी

परिणत - परिवर्तन

पराकाष्ठा - अत्यन्त तीव्रता

सृजन - रचना, उत्पत्ति

सर्वकालत्व - सभी कालों में विद्यमान

सर्वव्यापकत्व - सभी स्थानों में विद्यमान

चराचर - चर और अचर

स्थापत्य - स्थापना से संबन्धित

भूकेन्द्रिक - भूमि को केन्द्र में रखकर

सूर्यकेन्द्रिक - सूर्य को केन्द्र में रखकर

विपरीत - उल्टा

अपरिवर्तनशील - जिसमें परिवर्तन नहीं होता

अकारण - विना कारण के

अकस्मात् - अचानक

सिकुड़ना - संकुचित होना

रचयिता - रचना करने वाला

अक्षभ्रमण - धुरी पर घूमना

असीमित - सीमा से रहित

नवीन - नया

साम्यति - समानता

समग्र - सम्पूर्ण

1.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर -

1.क. पृथ्वी है, 2. ख.जल, 3. क.सत्य, 4. क.सत्य |

1.11 सन्दर्भ/सहायक ग्रन्थ सूची

1. ऋग्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2016
2. खगोलीय पिण्डों का परिक्रमण, कोपर्निकस, व्याख्या, तिवारी, श्रवणकुमार एवं पाण्डेय रमाकान्त, वाराणसी, हिन्दी प्रकाशन समिति, सन् 1972
3. गोलपरिभाषा, झा, सीताराम, दरभङ्गा, बिहार, श्रीसीताराम पुस्तकालय, संवत् 2027

4. भुवनकोश विमर्श, प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, अमर ग्रन्थ पब्लिकेशन्स दिल्ली, वर्ष 2004
5. यजुर्वेद, संस्कृत साहित्य प्रकाशन वर्ष 2015
6. राजवल्लभवास्तुशास्त्रम्, डॉ श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल प्रकाशन, वर्ष 2005
7. श्रीमद्भागवतपुराणम्, वेदव्यास,गोरखपुर, गीताप्रेस, संवत् 2059
8. श्रीमद्भगवद्गीता, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2048
9. ब्रह्मांड और सौर – परिवार प्रो. देवी प्रसाद त्रिपाठी, परिक्रमा प्रकाशन नई दिल्ली, वर्ष 2006

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.ब्रह्मांड का परिचय दीजिए |

2.सृष्टि उत्पति की वैदिक अवधारणा का उल्लेख कीजिये |

3.पञ्च महाभूतों की उत्पत्ति के बारे में बताएं |

इकाई-2
ज्योतिष एवं आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 आयुर्वेद एवं ज्योतिष विज्ञान
2.4 आयुर्वेद की परिभाषा -
2.5 ज्योतिष व आयुर्वेद की दृष्टि से रोगोत्पत्ति
2.6 ज्योतिष शास्त्र और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्दति
2.7 ज्योतिष तथा आयुर्वेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध
2.8 बोधात्मक प्रश्न
2.9 सारांश
2.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष{**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है जिसका का शीर्षक **"ज्योतिष और आयुर्वेद का परस्पर सम्बन्ध है"** यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है , कि हमारे शास्त्र परम्परा में जहाँ एक शास्त्र अपनी शास्त्रीय अवधारणा या सिद्धांतों में कहीं डगमगाता है तो वहीँ दूसरा शास्त्र उसका पूरक हो जाता है यही बात ज्योतिष और आयुर्वेदशास्त्र के विषय में भी परस्पर प्रतीत होती है | इसलिए आयुर्वेद को ज्योतिष शास्त्र का यमल भ्राता कहा जाता है | हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार , जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है , उसे रोग कहा जता है | इन रोगों की उत्पत्ति के कारण , लक्षण, भेद एवं

चिकित्सा विधि में आयुर्वेद एवं ज्योतिष में कितनी सामानता है ? व दोनों शास्त्रों का परस्पर सम्बन्ध को हम इस इकाई के अन्तर्गत जानेंगे |

2.2उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र व आयुर्वेद शास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष व आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से अवगत होंगे।
- ❖ ज्योतिष व आयुर्वेद के अन्त: करणसिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ❖ ज्योतिष व आयुर्वेद शास्त्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है जानपायेंगे।
- ❖ साथ ही ये भी जान पायेंगे कि कैसे दोनों शास्त्र रोग निर्णय व रोगशमन में एक दूसरे के पूरक हैं।

2.3 आयुर्वेद एवं ज्योतिष विज्ञान

"भारत के ऋषियों ने ग्रहों के प्रभाव एवं परिणामों को सम्भवत: दो विधियों द्वारा जाना होगा – 1.अंतर्दृष्टि एवं २.अवेक्षण |

अंतर्दृष्टि , अन्तरदर्शन या दिव्यदृष्टि एक वैयक्तिक अनुभूति; है, अथवा इसको एक विशेष प्रकार की सूक्ष्मता कह सकते हैं ; जिसे महर्षियों ने तपस्या , सदाचारी जीवन एवं योगाभ्यास द्वारा प्राप्त किया था |

ब्रटेल रसेल के विचार में –' तथ्य संग्रह के साधन के रूप में ' अन्तरदृष्टि एक वैद्य विधि है ,जो पर्याप्त मात्र में वैज्ञानिक प्रविधि के आस-पास आ जाती है | अंतर्दृष्टि - अभिज्ञान में एक मौलिक प्रकार की निश्चितता एवं विश्वसनीय पाया जती है | क्यूंकि यह विचारणीय पदार्थ के प्रस्तुत या प्रशंसनीय गुण – दोषों की छान – बीन में ही नहीं लगी

रहती है ;अपितु वह उसकी अंतर्वस्तुओं की प्रकृति के विषय में सर्वथा अनासक्त रहते हुए विचारणीय पदार्थ के समग्र रूप का अवलोकन कर उसका यथार्थ रूप चित्रित करती है | हमार महर्षियों ने योग सिद्धि के उचतर स्तर पर पहुँच कर ग्रह पिण्डों से सीधा सम्पर्क कर उनके रहस्यों की यांत्रिक उपकारणों के बिना ही अंतर्दृष्टि अभिज्ञान द्वारा अधिगत कर उनका यथार्थ रूप से प्रतिपादन किया | इसके साथ- साथ अवेक्षण ने भी अपना कार्य किया होगा | ऋषियों ने अकेली –अकेली और सामूहिक घटनाओं को बार- बार घटित होने वाली ग्रह स्थितियों के प्रकरण में ध्यान पूर्वक देखकर विशेष ग्रह योगों के प्रभाव वश लोगों पर विशेष प्रकार की शारीरिक एवं एवं मानसिक प्रतिक्रियांयें देखि होगी | सैकड़ों वर्षों तक लगातार चलने वाले इस प्रकार के सर्वेक्षणों ने ऋषियों को समाहित कर दिया होगा कि विभिन्न राशियों में विविध ग्रहों के होने पर जन्म लेने वाले जातकों में सुविशेष प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक विलक्षणताएं होती है | प्राचीन – ऋषियों ने केवल मन की एकाग्रता द्वारा वे तथ्य खोज निकाले , जिनके बाहरी स्तर को भी आज के वैज्ञानिक छू तक नहीं पाये हैं | इसका मुख्य कारण है चित वृतियों का निरोध जिससे विछिन्न एकाग्रता स्वयम उत्पन्न हो जाती है | चित्त-वृत्तियों के निरोध के लिए पूर्ण अनासक्ति की आवश्यकता होती है | क्यूंकि अनासक्ति के बिना न तो पूर्वाग्रह नष्ट होता है और न ही तटस्थता पूर्वक अवलोकन किया जा सकता है | इसलिए अनासक्ति के विना अज्ञात – क्षेत्र की खोज करना और यथार्थ परिणाम निकाल लेना संभव नहीं है | यह चमत्कार वसिष्ठ , अंगिरा , पराशर , जैमिनी , लोमश ,गर्ग पतंजलि , कपिल एवं कणाद आदि के ही वश का था , कि उन्होंने शुद्ध अंत:करण, मनोयोग एवं अनासक्ति भाव से अपनी उन्नत अंतर्दृष्टि से अदृश्य एवं अमूर्त विषयों की रहस्यमयी परतों को उलट –पलट कर महान एवं मौलिक तथ्यों एवं उनको जानने की प्रविधियों

को खोज निकाला |हमारी सारी प्राच्य विद्याएँ उन्हीं के तपोमय अन्वेषण का परिणाम है|

इसी प्रकार आयुर्वेद शास्त्र का भी उद्भव हुआ | आज से हजारों वर्ष पूर्व जब तपस्या, व्रत, उपवास अध्ययन में रत मनुष्यों में विघ्न भूत रोग , जीवन को कष्टमय बनाने लगे तो , तब हिमालय के निकट अंगिरा , जमदग्नि , वसिष्ठ , - कश्यप भृगु , आत्रेय , गौत्तम , शांडिल्य, नारद , अगस्त आदि ५४ ऋषि एकत्रित होकर यह विचार करने लगे ,कि इन रोगों से मुक्ति का उपायय क्या है | सभी ने ध्यान चक्षु { योग विद्या } से देखा कि इन रोगों से बचने का उपाय इन्द्र के पास है | यह ज्ञान व्रह्मा से प्रजापति को, प्रजापति से अश्विनी कुमार को , अश्विनी कुमार से इन्द्र के पास सुरक्षित है | सभी ऋषियों ने आपस में विचार किया कि कोन ऋषि इन्द्र के पास जाकर यह ज्ञान सीखेगा | तब भारद्वाज ऋषि ने यह दायित्व खुद सम्भाला और इन्द्र के पास जाकर आयुर्वेद के ज्ञान को सीखने लगे | तथा त्रि सूत्र आयुर्वेद को सीखा | त्रि सूत्र – हेतु { कारण } लिंग { लक्षण } तथा औषधी है | स्वस्थ व्यक्ति के हेतु , लक्षण तथा औषधि एवं रोगी व्यक्ति के रोग के कारण , लक्षण , तथा औषधि का ज्ञान प्राप्त करके | आत्रेयादि ऋषियों को उपदिष्ट किया | आत्रेय ने अग्निवेश प्रमुख ६ ऋषियों को इस आयुर्वेद के ज्ञान को दिया | अग्निवेश ने प्रथम अग्निवेश तन्त्र की रचना की | बाद में चरक ने इसे परिवर्धित करके चरक संहिता के नाम से पूरित किया | हजारों वर्ष के बाद यह चरक संहिता विखण्डित हो गई , और महर्षि दृढ बल ने पूरित किया | आज जो आयुर्वेद की प्रमुख संहिता है वह चरक संहिता ही है | वह आत्रेय काल , अग्निवेश काल ,चरक काल तथा दृढ बल काल की सम्पूर्ण संहिता है | त्रिसूत्र आयुर्वेद –

हेतु- लिंग औषधि ज्ञानं स्व स्थातु परायणम्|

त्रिसूत्रं शास्वतं पुण्यं वुबुधर्मम पितामह || च. सू.१\२४

2.4 आयुर्वेद की परिभाषा -

हिताऽहितं सुखं दु:खमायुस्तस्य हिताहितम् |

मानं च तत्व भवो तत्र आयुर्वेद: स उच्यते ||च.सू.१/४१

महर्षि चरक आयुर्वेद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि जिस शास्त्र में , हित आयु , अहित आयु , सुखायु , दु:खायु तथा आयु का मान इनके लिए क्या उपयोगी है , क्या अनुपयोगी है इसका वर्णन जिस शास्त्र में हो , उसे आयुर्वेद शास्त्र कहते हैं | अब यहाँ पर विचार आता है कि आयु क्या है | इसका वर्णन आगे करते हुए आचार्य लिखते हैं कि , शरीर, इन्द्रिय ,सत्व{मन} ,आत्मा , इन चार के संयोग को आयु कहते हैं | इसके धारि जीवित नित्यम तथा अनुबन्ध ये पर्यायवाची हैं | धार्यतीति जीवितम् | नित्यं शरीरस्य क्षनिक्त्वेन्न गच्छतीति नित्यग: आर्थात प्रतिक्षण शरीर का परिवर्तन होता रहता है | अनुबन्ध = गर्भावस्था के प्रथम क्षण से लेकर मृत्यु पर्यंत शरीर के साथ चेतना का अनुबन्ध रहना | यदि शरीर से चेतना { आत्मा } का अनुबन्ध समाप्त हो जाता है ;वह मृत शरीर या पंचत्व प्राप्त शरीर होता है | इसकी अब आयु समाप्त है | तो तात्पर्य यह हुआ कि जन्म के प्रथम क्षण से लेकर आयु की समाप्ति तक के ज्ञान को आयुर्वेद कहते हैं | यथाहि –

शरीरन्द्रिय- स्वात्म संयोगो धारी जीवितम् |

नित्यगाशचानुबन्धस्य पर्यायेरायुरुच्यते || च.सं.१/४२-४३

इससे यह तात्पर्य हुआ कि रोगों का अधिष्ठान शरीर एवं मन है | शारीरिक रोग शरीर के होते हैं और मानसिक रोग मन के होते हैं | आयुर्वेद का आधार ही त्रि सूत्र है | अत: व्यक्ति सवस्थ कैसे रहे | इसके लिए जो भी हेतु लिंग , औषध उन्हें स्वास्थ्य वर्धन या आरोग्यता के उपाय नाम से जाना जाता है | स्वस्थ केवल जन्मोत्तर बाल्यावस्था से न लेकर गर्भावस्था बालक की प्रथम दिन से गर्भाशय के बाहर आने तक की आयु काल

को स्वस्थ एवं रुग्ण दोनों भागों में विभाजित किया जाता है | कुछ महिलाओं का गर्भपात , १० दिन में हो जाता है , कुछ का एक माह में , कुछ ४ माह व कुछ का ८ मास का भी, यह स्वस्थ बालक का जन्म नहीं है | उसी तरह कोई बालक जन्मांध उत्पन्न हो जाता है किसी के दो शिर होते हैं कोई मूक व बधिर पैदा होता है यह भी स्वस्थ बालक का जन्म नहीं है , जोतिश शास्त्र में ऐसे जन्मजात रोगों को कर्मजन्य व्याधियों के रूप में जाना जाता है जिसे आयुर्वेद भी स्वीकारता है , आर्थात दोनों में सामानता नजर आती है | अत: स्वस्थ रहने के लिए चाहे वह बालक हो या युवा , वृद्ध या नर-नारी , सभी के स्वस्थ रहने के लिए आयुर्वेद में उपाय बताए गए हैं | तथा रोगी व्यक्ति के भी कारण , लक्षण एवं रोग शमन के उपाय कहे गए हैं | यही आयुर्वेद का प्रमुख प्रयोजन है | **"स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् | आतुरस्य विकार प्रशमनं च" || च.सं.सू.३०\२६**

2.5. ज्योतिष व आयुर्वेद की दृष्टि से रोगोत्पत्ति –

ज्योतिष शास्त्र एवं आयुर्वेद दोनों इस बात पर सहमत है कि मनुष्य अपने पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश रोगी बनता है | [1 प्रश्न मार्ग 13 / 29] तथा जीवन की अन्य घटनाओं की तरह मनुष्य को होने वाले रोगों की जानकारी जन्मकुण्डली के द्वारा प्राप्त की जाती सकती है | आयुर्वेद का सिद्दान्त- पक्ष है, कि कर्म प्रकोप एवं दोष – प्रकोप रोगोत्पत्ति के हेतु है | सामान्यतया अनुचित – आहार – विहार से रोग उत्पन्न होते हैं |महर्षि चरक ने भी चरक संहिता के उत्तरतंत्र में कहा है " **मिथ्याहार विहाराभ्यां रोगोत्पत्ति प्रजायते"** | [।४०/१६३] किन्तु जब ऋतू के अनुसार आहार विहार किया जाय, तन और मन सदवृत्ति से कार्य करें , मौसम भी रोगोत्पत्ति का न हो और अचानक इस स्थिति में रोग पैदा हो जाय तो उस रोग को कर्मजन्य मानना चाहिए |[३ सु.सं.] आयुर्वेद में कर्मजन्य रोगों का कारण जो कर्म माना गया है , वह संचित कर्म है , जिसके एक भाग कप प्रारब्ध कहते हैं तथा मिथ्या आहार – विहार को क्रियमाण कर्म | इस प्रकार क्रम प्रकोप एवं दोष प्रकोप दोनों के मूल में अशुभ या अनुचित कर्म ही मूल कारण होता है ; इसलिए ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्वार्जित कर्मों वे चाहे इस जन्म के हो या जन्म

जन्मान्तरों के हो सभी अशुभ कर्म रोग और दुःख के सूचक होते हैं | या यूँ समझें रोग के कारण माने जाते हैं |

शतात्पीय तंत्र में कहा गया है – कि पूर्व जन्म में किया गया पाप इस जन्म में कुष्ठ , क्षय , प्रमेह ,संग्रहणी इत्यादि व्याधियों को उत्पन्न करते हैं | त्रिशठाचार्य के अनुसार भी उदर रोग , गुप्त रोग , उन्माद , अपस्मार , पंगुता , कर्ण रोग , वाक्, दोष प्रमेह , संग्रहनी, अश्मरी , अतिसार , भगन्दर जैसे रोगों को उत्पन्न करते हैं | रोगोत्पत्ति के संदर्भ में आयुर्वेद के परम्परागत विद्वानों का कहना है , कि आहार-विहार की अनियमितता से रोग पैदा होते हैं और यदि मनुष्य इन पर समुचित नियंत्रण रखें , तो वह स्वस्थ एवं दीर्घजीवी हो सकता है | [४ वाग्भट्ट / माध्वादि] किन्तु जोतिश शास्त्र की मान्यता इससे भिन्न है | क्यूंकि यह बात अनेक बार प्रत्यक्ष रूप से देखने में आती है कि कुछ लोग नितांत अनियमितता जीवन बिताते हैं और उनका खान – पान भी अनियंत्रित होता है | और कुछ लोग नियमित जीवन एवं सदाचार के घनी होते हुए भी रोगों के शिकार हो जाते हैं | इस विषय में इस विषय में आचार्य शंकर एवं स्वामी विवेकानंद का नाम साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है , जिनकी मधुमेह के कारण असामयिक मृत्यु हुई | इस विषय एक ध्यान देने योग्य बात है, कि यदि मात्र आहार – विहार की अनियमितता को ही रोगोत्पत्ति का कारण मान लिया जाय तो आनुवांशिक रोग, महामारी जन्य रोग एवं आकस्मिक रोगों की उत्पत्ति के कारणों की भाँती एवं सटीक व्याख्या नहीं की जा सकती है | इस स्थिति में कहीं न कहीं खींचतान या जोड़- तोड़ करना पडेगा | यहीं कारण है कि आयुर्वेद शास्त्र ने भी रोगोत्पत्ति के कारणों का विचार करते हुए अंत में निष्कर्ष के रूप में बताया कि –‘ कभी पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाव से कभी - कभी दोषों के प्रकोप से और कभी – कभी इन दोनों के मिले – जुले असर से शारीरिक एवं मानशिक रोग होते हैं | ज्योतिषशास्त्र की मान्यतानुसार प्रत्येक छोटा-बड़ा रोग पूर्वार्जित कर्मों के फल स्वरुप उत्पन्न होता है और जन्मकाल , प्रश्न काल एवं गौचर में प्रतिकूल ग्रहों के द्वारा उसकी जानकारी की जा सकती है | इस सिद्धांत के अनुसार वह किसी भी व्यक्ति की जन्मकुंडली के आधार पर वर्षों पहले यह बता सकते हैं, कि उस व्यक्ति को कब कोन सा रोग उत्पन्न होगा ? और उसका परिणाम क्या रहेगा ?

2.6 ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेद की चिकित्सा पद्दति

आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य मानकर असाध्य कह दिया और ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला – उन कर्मजन्य रोगों के होने की सम्भावना , उनके प्रारम्भ तथा समाप्ति का काल और उनके शमन { चिकित्सा } की विधियों का ज्योतिष शास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है |ज्योतिषशास्त्र यह बताने में समर्थ है , कि किसी व्यक्ति को पूर्वार्जित अशुभ कर्मों के प्रभाववश किस समय कोन- सा रोग होगा और उसका परिणाम क्या निकलेगा | जिस प्रकार दोष { कफ, वात एवं पित्त } जानी रोगों का आयुर्वेद में विस्तार पूर्वक वर्णन एवम विवेचन किया गया है, उसी कर्मजन्य व्याधियों {रोग } का सांगोपांग विवेचन इस शास्त्र में किया गया है | आयुर्वेद में स्वास्थ्य – रक्षणार्थ औषधि संचय , औषधि निर्माण एवं शल्य क्रिया में काल्जन्य विशेषताओं को अतीव उपयोगी मान् गया [है५ सु.सं.सूत्र. १/४२ | काल] आयुर्वेद में स्वास्थ्य – रक्षणार्थ औषधि संचय , औषधि निर्माण एवं शल्य क्रिया में काल्जन्य विशेषताओं को अतीव उपयोगी माना गया है |काल के अति योग अयोग या मिथ्या योग से रोग उत्पन्न होते हैं | अविकृत ऋतू में औषधि का संचय एवं निर्माण करने से वह विशेष गुणकारी होती है और वह ऋतू की विकृति से उत्पन्न रोगों का शमन कर देती है |[६ सू. सं. १/४२] आयुर्वेद का तो यहाँ तक कहना है –कि काल की विशेषताएं अपने स्वभाव से ही दोषों का संचय प्रकोप शमन एवं प्रतीकार का देती है | अत: योग्य चिकित्सक को कालकृत का संचय , प्रकोप शमन एवं प्रतीकार कर देती है | अत: योग्य चिकित्सक को कालकृत विशेषताओं को ध्यान में रखकर चिकित्सा करनी चाहिए | किन्तु काल का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा होता है | चिकित्सा के लिए परमोपयोगी दिन ,रात , संध्या , नक्षत्र , पक्ष , मॉस ,ऋतू , एवं पर्व आदि की जानकारी इस शास्त्र द्वारा ही दी जाती है | अत: ज्योतिष के ज्ञान के विना न तो यथा समय औषधि संचय या औषधि निर्माण ही सम्भव है और न ही शल्य क्रिया या चिमित्सा की जा सकती है | अत: जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष – नियमों की जानकारी रखते हैं वे चिकित्सा में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं |

वास्तु: आयुर्वेद ज्योतिष का चचेरा भाई है | ज्योतिष के द्वारा रोगी की चर्या , चेष्टा , आकृति सर्वांग लक्षण , शकुन एवं उसकी कुंडली के योगों के माध्यम से रोगों का अध्ययन कर यह जाना जा सकता है, कि इस रोग की समयावधि कितनी होगी ? क्या यह साध्य है या, असाध्य यदि यह साध्य है, तो कितने समय में ठीक होगा ? रोगी को चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श और उसे दी जानी वाली दवाई से लाभ

होगा या नहीं ? इत्यादि | ये कुछ ऐसे महतवपूर्ण प्रश्न है , जिनका ठीक तरह से समाधान आयुर्वेद या अन्य चिकित्सा शास्त्रों से नहीं किया जा सकता | किन्तु ज्योतिष शास्त्र में इन सब बातों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है | इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिष के ज्ञान की चिकित्सा में अत्यन्त उपयोगिता को ध्यान में रखकर " **ज्योतिर्वैद्यो निरंतरो**" की कहावत प्रचलित हुई होगी | इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है – कि सामान्य व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है | इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है – कि सामान्य व्यक्ति भी इस शास्त्र के सम्यक ज्ञान से अनेक रोगों से बच सकता है | क्यूंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चंद्रमा आदि के प्रभाव वश उत्पन्न होते हैं | जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी गति स्थिति एवं कलाओं के ह्रास बृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल पुथल मचा देता है , उसी प्रकार यह मनुष्य के शरीर की रक्त – संचार प्रणाली , उसके स्नायु – मण्डल , एवं मन में उथल- पुथल पैदा कर निर्बल मनुष्य को रोगी बना देता है| इसलिए ज्योतिष द्वारा चन्द्रमा के तत्वों और उसके प्रभाव वाले पदार्थों को जानकार अष्टमी , अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे पदार्थों के सेवन पर आत्मनियंत्रण रखकर मनुष्य स्वयम को रोगों के प्रकोप से बचा सकता है | काल विज्ञान , कर्मफल ज्ञान , उत्पात ज्ञान , शकुन विद्या , सामुद्रिक शास्त्र , सर्वांग – लक्षण , आयुर्विज्ञान एवं मुहूर्तज्ञान आदि ये आचार्य चरक एवं सब ज्योतिष शास्त्र की आयुर्वेद को दें है , जिनका भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग – पग पर उपयोग किया जाता है | आचार्य चरक एवं सुश्रुत संहिताएँ इसके जीवन्त साक्ष्य हैं |

2.7 ज्योतिष तथा आयुर्वेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध –

प्राचीन काल में वैद्यजन ज्योतिषशास्त्र का तथा दैवज्ञ जन आयुर्वेदशास्त्र का अध्ययन करते थे | आचार्य सुश्रुत तथा अग्निवेश दोनों ने ही वैद्य को बहुश्रुत होना चाहिए ऐसा कहा है | बहुश्रुत का अर्थ है अनेक शास्त्रों { विषयों } का जानकार होना | दक्षिण भारत में विशेषकर केरल प्रदेश ज्योतिष और आयुर्वेद के गढ़ रहे हैं | यही कारण है कि फलित के गूढ़ रहस्यों का प्रतिपादन करने वाले ग्रन्थ केरलीय विद्वानों द्वारा लिखे गए हैं | केरल के पंचकर्म चिकत्सा की तो भारतवर्ष में सर्वत्र धाक है | [१प्रश्न मार्ग १२/१]

रोग के निर्णय एवं उसके उपचार के विषय में ज्योतिष और आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक शास्त्र हैं। इसीलिए कि ज्योतिष ग्रह, भाव, राशि के आधार पर गुण धर्मों का निरूपण

करता है | तथा आयुर्वेद मनुष्य की चर्या, त्रिदोष (वात-पित-कफ) आहार विहार के आधार पर रोग के गुण धर्मों का निर्णय कर उपचार करता है।

उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है , कि दोनों शास्त्रों में अन्योन्य सम्बन्ध है | व्याधि विचार के संदर्भ में दोनों शास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं | जहाँ ज्योतिष शास्त्र ग्रह राशि भाव से बनने वाले योगों से पूर्वानुमान के साथ ये बताने में समर्थ है कि अमुक जातक को कब किस काल खण्ड में कोन सी व्याधि किस अंग विभाग में होगी तथा उसकी साध्यासाध्यता कैसे होगी ,तथा कर्मजन्य, दोषजन्य, साध्य, असाध्य कारणों का पूर्व ज्ञान कर सकता है उसी बात की पुष्टि आयुर्वेद शास्त्र भी दोषजन्य , कर्मजन्य व्याधियों के रूप में करता है | अत: उपरोक्त चर्चा का आशय यही है , कि रो निर्धारण व चिकित्सा इन दोनों शास्त्रों { ज्योतिष-आयुर्वेद } की सामान भूमिका है |

2.8 बोधात्मक प्रश्न

1. हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार , जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दु:ख मिलता है , उसे क्या कहा जाता है |

क.दु:ख

ख.रोग

ग.क्रोध

घ. कोई नहीं

2. भारत के ऋषियों ने ग्रहों के प्रभाव एवं परिणामों को जानने की सम्भवत: कितनी विधियां बताई |

क.दो बिधि

ख.तीन विधि

ग. चार विधि

घ.एक विधि

3.आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्म देव ने किस को दिया

क. प्रजापति

ख.इन्द्र

ग.भारद्वाज

घ.अग्निवेश और चरक

4.चरक संहिता किसका ग्रन्थ है

क.आयुर्वेद

ख.ज्योतिष

ग.दर्शन

घ कोई नहीं

2.9 सारांश –

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना, कि ज्योतिष शास्त्र में किस प्रकार रोगों से सम्बन्धित विषयों का प्रतिपादन किया जाता है | साथ ही आयुर्वेद के साथ - साथ ज्योतिष शास्त्र का रोग निर्णय व रोगों की चिकित्सा में तादात्म्य सम्बन्ध कैसा है, उससे परिचित हुए | तथा आयुर्वेद के स्वरुप एवं उद्भव का बोध किया | इन सब सिद्धांतों का ज्ञान निश्चित ही चिकित्सा ज्योतिष के अध्ययन में सहायक सिद्ध होगा |

2.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर –

1. ख.रोग

2. क.दो बिधि

3. क. प्रजापति

4. क.आयुर्वेद

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता

प्रश्नमार्ग / माधव निदान

गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

१.ज्योतिष शास्त्र की प्रविधियों का परिचय दीजिए|

२.आयुर्वेद शास्त्र का स्वरुप व प्रयोजन के विषय में लिखिए|

३.ज्योतिष व आयुर्वेद शास्त्र का परस्पर सम्बन्ध को बताएं|

इकाई-3

चिकित्सा ज्योतिष का परिचय एवं प्रयोजन इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2उद्देश्य
3.3 ज्योतिष परिचय
3.4 ग्रह प्रभाव का सिद्धांत
3.5 ग्रह प्रभाव का सिद्धांत
3.6 अभ्यास प्रश्न –
3.7 सारांश
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.10 सहायक पाठ्यसामग्री
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना :-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष{**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्डकी तृतीय इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **" चिकित्सा ज्योतिष का परिचय एवं प्रयोजन "** है**,** इस से पूर्व की इकाई में आपने ज्योतिष और आयुर्वेद के परस्पर सम्बन्ध को जाना कि दोनों शास्त्र किस प्रकार से रोग ज्ञान व चिकित्सा में एक दूसरे के सहायक हैं | अब इसी क्रम में हम जानेंगे कि चिकित्सा ज्योतिष क्या है ; कैसे रोगों की चिकित्सा की जाती है कैसे चिकित्सा में ज्योतिष शास्त्र की परम्परा रही है और आज के वैज्ञानिक युग में इसकी क्या प्रासंगिकता है , इत्यादि विषयों का हम विस्तार पूर्वक इस इकाई के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे |

3.2 उद्देश्य: –

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष में रोग ज्ञान की परम्परा से परिचित हो पायेंगे।
- ❖ चिकित्सा ज्योतिष के सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ❖ ज्योतिष व आयुर्वेद शास्त्र का परस्पर क्या सम्बन्ध है जान पायेंगे।
- ❖ साथ ही ये भी जान पायेंगे कि कैसे शास्त्र में चिकित्सा की जाती है |

3.3ज्योतिष परिचय

सर्व प्रथम हम चिकित्सा ज्योतिष की बात करने से पहले सार रूप में ज्योतिष शास्त्र को समझने का प्रयत्न करते हैं - प्राचीनकाल से ही ज्योतिष शास्त्र का सम्बन्ध मानव और मानवीय सभ्यता एवं तत्सम्बन्धी इतिहास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है | आदिकाल में केवल सूर्यादि ग्रहों एवं काल का बोध करवाने वाले शास्त्र को ही ज्योतिष शास्त्र

माना जता था –{ **ज्योतिषं सूर्यादि ग्रहाणां बोधक शास्त्रम्** } परन्तु शनै: शनै: मानवीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ मनुष्य कि बाह्य एवं आंतरिक प्रवृत्तियों का अनुशीलन भी इस शास्त्र के अन्तर्गत किया जाने लगा | मनुष्य जीवन के प्रत्येक क्रिया-कलाप – जैसे सुख-दुःख उन्नति-अवनति , इष्ट-अनिष्ट , भाग्योदय आदि सभी का समाधान ज्योतिष शास्त्र में ढूंडा जाने लगा ज्योतिष शास्त्र की उपादेयता के सम्बन्ध में किसी भी बुद्धि – जीवी व्यक्ति को संदेह नहीं होना चाहिए | जैसे की पूर्व में चर्चा हुई की यह शास्त्र एक सुचनाताम्क शास्त्र है | इस शास्त्र के ज्ञान के द्वारा मनुष्य को शुभ, अशुभ काल , यश – अपयश , लाभ – हानि जन्म-मृत्यु , भाग्योदयादि का ज्ञान होता है | उदाहरण के तौर पे देखें – जैसे वर्षा आगमन की सूचना शीतवायु के प्रवाह से पूर्वत: ही मिल जाती है , एवं जैसे मछलीयों को सामुद्रिक तूफ़ान की पूर्वानुभूति हो जाती है ,उसी भाँती ज्योतिष के आचार्यों द्वारा प्रणीत ज्योतिषीय सूत्रों से मनुष्य के अनुकूल-प्रतिकूल समय का बोध कराने वाला एक मात्र साधन ज्योतिष शास्त्र ही है | प्राचीन काल में दो ही विज्ञान प्रमुख थे एक आयुर्विज्ञान और दुसरा ज्योतिर्विज्ञान | भारतीय वैदिक वाङमय में**"यथा पिंडे तथा ब्रह्मांडे"**का सिद्धान्त सुदूरतम प्राचीनकाल से ही लोक विद है | इस सिद्धांत से ये मालूम होता है, कि सौर जगत में सूर्य चन्द्रादि ग्रहों की विभिन्न गतिविधियों एवं क्रिया- कलापों में जो सिद्धांत काम करते हैं , ठीक तदनुरूप प्राणी मात्र के शरीर में स्थित सौर जगत की इकाई का संचालन करते हैं | इस सिद्धांत को यदि हृदयंगम करें तो हमें प्राणी – पदार्थ की आंतरिक संरचना के आधार पे ध्यान देना होगा | प्रत्येक प्राणी या पदार्थ की सूक्ष्म तथा प्रथम संरचना का आधार परमाणु है और इन परमाणुओं की इकाईयों {ईंटों}को जोड़कर प्राणी या पदार्थ का वृहत्तम भवन ढांचा तैयार होता है | यह परमाणु सौर जगत के सामान आकार- प्रकार वाला होता है |इसके मध्य में एक धन विद्युत् बिंदु होता है, जिसे केंद्र कहते हैं इसी केंद्र के चारों और

अनेक सुक्ष्मातिसुक्ष्म विद्युतकण चक्कर लगाते हैं | और वे इस गति - विधि में सौर जगत के प्रत्येकक्रिया- कलाप का अनुकरण करते हैं | इस प्रकार के अनन्त परमाणुओं – जिन्हें शरीर विज्ञान की भाषा में कोशिकाएं { cells} कहा जता है | और इन्ही कोशिकाओं के माध्यम से हमारा शरीर एवं शरीर के अवयव सौर जगत के क्रिया – कलापों का अनुकरण करते हैं | प्रथम अवलोकन से हमें यह कठिन हो सकता है , कि हमारे और ग्रह – नक्षत्रों के मध्य कोई सीधा सम्पर्क या आदान- प्रदान है | किन्तु हमें यह बात दृष्टि से ओझल नहीं होने देनी चाहिए कि विद्युत् एवं ब्रह्मांड रश्मियों द्वारा हमारा सौर जगत में स्थित ग्रहनक्षत्रों के पिंडों से सीधा सम्पर्क है – जिनकी रासायनिक बनावट निरंतर परिवर्तित होती हुई हम पर सतत एवं अविछिन्न प्रभाव डाल रही है | उपरोक्त बातें निर्विवाद रूप से सत्य हैं कि ब्रह्मांड एवं उसके वासियों के बीच सतत्त सम्बन्ध मानने का समस्त श्रेय प्राचीन भारतीय ऋषि – महर्षि – मनीषियों को ही जाता है जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर ज्योतिष एवं योग शास्त्र के सुमानी सिद्धांतों का प्रणयन किया है |

3.4 ग्रह प्रभाव का सिद्धांत

भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार त्रिगुणात्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत सत्व , रज, एवम, तमोमय है | ज्योतिष- शास्त्र में भी सूर्यादि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण किया गया है |[1] { जातकतत्व दैवज्ञ महादेव शर्मा अ.1 , सु.37} जिसका अध्ययन हम अग्रिम इकाईयों में विस्तार पूर्वक करेंगे |'जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है , उनकी अमृतमय किरणें; जिनमें रजोगुण अधिक रहता है, उनकी उभय – गुण मिश्रित किरणें ; जिनमें तमोगुण अधिक रहता है, उनकी बिषम किरणें एवं जिनमें तीनों गुणों की अल्पता रहती है ,उनकी गुणहीन किरणें मानी गयी हैं | ग्रहों के शुभाशुभत्व का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है | आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रश्मियाँ परस्पर मिलती रहती हैं और एक – दुसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं | रश्मिविश्लेष्णका सिद्धांत बताता है | कि प्रत्येक ग्रहों की रश्मियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्रास – वृद्धि होती रहती है , जिसे ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में स्थान बल , दिक्बल कालबल, एवं चेष्टा बल कहा गया है | अत: ग्रहों के शुभाशुभ का विचार

करते समय उनके बलाबल का विचार करना भी परम – आवश्यक माना गया है | आकाश में प्रतिक्षण अमृतरश्मि सोम्य ग्रह अपनी गति से जहाँ – जहाँ गमन करते हैं,उनकी किरणें भूमण्डल के उन प्रदेशों पर पड़कर वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य एवं बुद्धि-आदि पर अपना सोम्य या शुभ प्रभाव डालते हैं | विषमय किरणों वाले क्रूर ग्रह अपनी गति से जहाँ गमन करते हैं, वहाँ के निवासियों के स्वास्थ्य और बुद्धि पर वे अपना दुष्प्रभाव डालते हैं | मिश्रित रश्मि ग्रहों का प्रभाव मिश्रित एवं गुणहीन रश्मि वाले ग्रहों का प्रभाव अकिंचकर होता है | ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक सा नहीं होता ; क्यूंकि एक कलावच्छेदन दो विभिन्न देशों पर विभिन्न ग्रहों की रश्मियां एक जैसी नहीं पडतीं | विभिन्न देशों में सूर्य एवं चन्द्र आदि ग्रहों के उदयास्त काल की भिन्नता या देशांतर – संस्कार को यहाँ साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है | अत: यह निष्कर्ष अनायास ही समझ में आ जाता है ,कि स्थान विशेष पर ग्रह रश्मियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहां उत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव , भिन्न आकृति एवं विलक्षण शरीरावयव वाला होगा | इनके स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है | अस्तु इस प्रबंध में मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर ग्रह किन-किन रोगों को उत्पन्न करते हैं ? यह विचारणीय है''[2] | ज्योतिष में रोग विचार {रोग परिज्ञान के सिद्धांत प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

3.5 रोग विचार के सिद्धांत

सनातनी परम्परा में यह शास्त्र उक्ति विख्यात है कि **"वेदोऽखिलं धर्ममूलम्"** वेद का लक्ष्य है ईष्ट प्राप्ति और अनिष्ट परिहार आर्थात हमारे अशुभत्व का शमन और अभीष्ट की प्राप्ति इसी सिद्धांत को हृदयंगम करके वेदांग शास्त्र ज्योतिष का भी यही लक्ष्य है कि हमारे शुभाशुभ कर्मों के वशीभूत अशुभ फल को पहचान कर ; जो कि जातक के जन्मांग में अशुभ ग्रहयोग, दशा व गोचर के माध्यम से हम शास्त्रानुशरण करके ज्ञात करते हैं , कि अमुक व्यक्ति को अमुक कालखण्ड में अमुक रोग होगा | इन सब विषयों का ज्ञान हम विधिवत चिकित्सा ज्यतिष के माध्यम से ही जान सकते हैं | प्राचीन भारत में ज्योतिषशास्त्र के मनीषी चिन्तकों ने इस शास्त्रके सुमान्य नियमों द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य तथा उसमें उत्पन्न होने वाले विकारों का विचार काफी गम्भीरता से किया है | आचार्य वाराहमिहिर ने अपनें बृहज्जातक में अपने से पूर्ववर्ती मय,यवन,मणिथ , शक्ति , जीव शर्मा एवं सत्याचार्य आदि मनीषियों का नामोल्लेख करते हुए बताया है, कि इन विद्वानों ने मनुष्य की आयु के यथार्थ रूप से परिज्ञान के लिए अनेक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है ,| वृहज्जातक आयुर्दायाध्याय श्लोक -१

यद्यपि आजकल इन आचार्यों की कोई रचना या ग्रन्थ उपलब्ध नहीं | किन्तु प्राचीनकाल में इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ अवश्य रहे होंगे , जिनका सम्यक परिशीलन ,

मनन एवं चिंतन कर वाराहमिहिर ने मनुष्य की आयु और – मानव – जीवन में उत्पन्न होने वाले अनेक रोगों के योगों का प्रतिपादन किया है |

वाराहमिहिर के काल {सन ५०५ } में जातक ग्रंथों में जन्मजात एवं जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों का –योग , दशा एवं,गोचर के आधार पर विचार होने लगा था | यद्यपि उस समय उस अन्धता , काणत्व , मूकता, बधिरता , पंगुता,एवं नपुंसकता जैसे जन्मजात रोगों और ज्वर , अतिसार पाण्डु, उदर रोग , कास , कुष्ठ जलोदर क्षय , गुल्म , राजयक्ष्मा , प्रमेह , गुप्तरोग , उन्माद एवं अपस्मार आदि जन्म के बाद उत्पन्न होने वाले रोगों के विचार तक सीमित रहा है | किन्तु इतने प्राचीन काल में इन रोगों को कर्मजन्य मान कर , जिनके कार्य – कारणों का आयुर्वेद में भी स्पष्टतया प्रतिपादन नहीं हो पाया था – वे विचारणीय एवं विवेचनाधीन हैं | चिकित्सा ज्योतिष के परिचय में हमको सर्व प्रथम यह जानने की आवश्यकता है ,की शास्त्र में रोगों का विचार किस पद्धति से किया जाता है, किन- किन भावों का व ग्रहों की इसमें प्रधान भूमिकाएं हैं, इत्यादि विषयों को समझना होगा | ज्योतिष शास्त्र की मान्यतानुसार रोगों का विचार इस प्रकार किया जाता है –

षष्ठ { रोग } भाव , षष्ठ भाव में स्थित ग्रह , व्यय तथा अष्टम स्थान में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह , षष्ठेश { रोगेश} से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव , से रोग विचार किया जाता है |[1 फलदीपिका14/1] इसके अतिरिक्त पाप- प्रभाव – युक्त राशियाँ एवं भाव, नीच राशि- गत, अस्तं गत ग्रह तथा निर्बल ग्रह , लग्न और लग्नेश ग्रह , अवरोही, ग्रह, क्रूरषष्ट्याशगत ग्रह , मारक ग्रह एवं बालारिष्ट कारक ग्रह भी रोगों के कारक माने गये हैं | इन ग्रहों के शुभाशुभत्व एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है | और बहुलांश में रोग के साध्य - असाध्यत्व का निर्णय किया जाता है | इस विषय को विस्तार पूर्वक जानने से पहले ये जानना आवश्यक है कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है , अपितु सूचक हैं | अर्थात ग्रह किसी को सुख – दुःख नहीं देते हैं; आर्थात आने – वाले सुख: दुःख की सूचना देते हैं | वस्तुत: ग्रह अपनी गति, स्थिति एवं युति के द्वारा यह व्यक्त करते हैं कि उनकी रश्मियों का हम पर सतत एवं सुनिश्चित प्रभाव पड़ता है | पर यह स्मरण रखने योग्य बात है, कि हम इस प्रभाव के हेतु भूत – भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों में विपर्यय कर इसे अन्यथा सिद्ध कर सकते हैं | ग्रह चिकित्सा दूषित फल को दूर करने के सभी उपाय इस सिद्धांत पर आधारित हैं | इस विषय पर विस्तार से विचार करने के पूर्व एक बात और स्पष्ट कर देना चाहेंगे कि ग्रह फलाफल के नियामक नहीं है ,अपितु सूचक हैं | अर्थात ग्रह किसी को सुख- दुःख की सूचना देते हैं | इस सिद्धांत को और अधिक स्पष्ट करने के लिए ग्रहों के अनिष्ट प्रभाव को दूर करने के लिए , जो रत्न धारण की परिपाटी

ज्योतिष- शास्त्र में प्रचलित है, उसे उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत किया जा सकता है | प्राय: सौरमण्डलीय वातावरण का प्रभाव पाषाणों के रंग – रूप , आकार-प्रकार तथा पृथ्वी,जल,अग्नि, वायु आदि तत्त्व की प्रधानता पर पड़ता है | सत्व – गुण वाली रश्मियों के ग्रहों के प्रभाव में उत्पन्न व्यक्ति को वैसे ही रश्मियों के वातावरण में उत्पन्न रत्नं धारण कराया जाय , तो वह व्यक्ति नैसर्गिक क्षमताओं में वृद्धि कर उचित परिणाम देगा | यदि व्यक्ति को ग्रहों के विपरीत – प्रभावोत्पन्न धारण करना इस शास्त्र का अभिप्रेत है | एक अन्य प्रकार यह है कि ग्रहों के जिन तत्वों के प्रभाव से जो रत्न विशेष प्रभावित हैं ; उनका प्रयोग उस ग्रह के तत्व के अभाव में उत्पन्न मनुष्य पर किया जाय तो वह क्षतिपूर्ति के सिद्धातानुसार उस व्यक्ति को उचित शक्ति देने वाला होगा उदाहरणार्थ कृष्णपक्ष में उत्पन्न जिन व्यक्तियों को चंद्रमा का अरिष्ट होता है ,अर्थात जिन्हें चन्द्रबल या चन्द्रमा की अमृत- रश्मियों की शक्ति उपलब्ध नहीं होती , उनके शरीर में कैल्शियम चूने की अल्पता रहती है | ऐसी अवस्था में चन्द्र- प्रभाव जन्य उक्त कमी को पूरा करने के लिए मोक्तिक मणि का प्रयोग लाभ कारी होता है | यही कारण है कि ज्योतिष शास्त्र चन्द्रमा के कष्ट से पीड़ित व्यक्ति को मोती के प्रयोग का निर्देश देता है |यह प्रयोग रत्नधारण या रत्नजन्य –औषधि के रूप में किया जा सकता है ‘ मुक्ता भस्म , मुक्ता पिस्टी इत्यादि औषधि चन्द्र जन्य रोगों में लाभ कारी है | इसी क्रम में अन्य ग्रहों से सम्बन्धित मणि, रत्न, औषधि का भी प्रयोग होता है जिसके विषय में हम आगे की इकाईयों में जानेगें |

3.6 अभ्यास प्रश्न –

1. भारतीय दर्शन की मान्यतानुसार गुण कितनें प्रकार के होते हैं |
2. मणि, मन्त्र औषधि को क्या कहा जाता है |
3.आचार्य वाराहमिहिर का काल कोन सा है |
4.ग्रह, योग, दशा, गौचर का फल किस आधार पर किया जाता है |

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने चिकित्सा ज्योतिष के विषय में विस्तृत रूप से जाना कि किस प्रकार ग्रहों की रश्मियों का प्रभाव मानव पर पड़ता है, और उसका शुभा - शुभत्व के कारण रुग्णता और स्वस्थता का क्रम चलता है | इसी प्रकार कोन – कोन से भाव , ग्रह , राशियाँ रोग प्रद स्थिति उत्पन्न करती है तथा उसके साध्यता – असाध्यता के क्या लक्षण हैं , इत्यादि विषयों का सम्यक अध्ययन किया आशा है,इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप को चिकित्सा ज्योतिष के स्वरुप को समझने में सहायता मिलेगी |

3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.तीन { सत्व , रज , तम }
2.. ग्रह चिकित्सा
3 लगभग 505 ई.
4. त्रिविध कर्माश्रित

3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता

प्रश्नमार्ग / माधव निदान

गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

वीर सिंहावलोक

स्वस्थ वृत्त विज्ञान { डॉ. राम हर्ष सिंह } चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम , दिल्ली

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.त्रिविध कर्मों का सविस्तार परिचय दीजिए

2. रोगों का कारकत्व करने वाले भावों व ग्रहों का परिचय दीजिए

3.चिकित्सा ज्योतिष की आज के परिप्रेक्ष्य में क्या भूमिका हो सकती है स्व विचार पूर्वक लिखिए|

इकाई- 4 मानव जीवन पर ग्रहों का प्रभाव इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 विषय – प्रवेश
4.4 ग्रह प्रभाव-
4.5 शास्त्र उपयोगिता
4.6 बोधात्मक प्रश्न
4.7 सारांश
4.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची / सहायक पाठ्यसामग्री
4.9.1 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20**} में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"मानव जीवन पर ग्रहों का प्रभाव "** है इससे पूर्व की इकाई में आप ने चिकित्सा ज्योतिष का परिचय जाना तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव - जगत पर पड़ता है | अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे कि ग्रहों का प्रभाव मानव जीवन पर कैसे पड़ता है | इसके शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक आधार क्या हैं | इन सभी विषयों का अध्ययन हम इस इकाई के अंतर्गत करेगे |

4.2उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र ग्रह फल कापरिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष व आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से अवगत होंगे।
- ❖ साथ ही कर्मवाद और भाग्यवाद के सिद्धांतों से भी परिचित हो पायेंगे ।
- ❖ ज्योतिष शास्त्र की वैज्ञानिकता एवं प्रासंगिकता से भी परिचित हो पायेंगे ।

4.3 विषय – प्रवेश –

इस संसार रुपी महा सागर में प्रत्येक जीव सुख की अभिलाषा करता है ; मानव स्वभाव से स्वसुख निवेशी प्राणी है , मानव जीवन में घटित होने वाली घटनाओं सुख दुःख उन्नति – अवनति , लाभ,हानि ,रोग, शोक, आदि में पूर्व – जन्म जन्मान्तरों के कर्मो का भी प्रभाव होता है , क्योंकि – "**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"** | ज्योतिष शास्त्र शुभाशुभ कर्मों के परिपाक का अध्ययन कर मनुष्य को सचेत करता है

| जैसे कि आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है- **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाऽशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्| व्यंजयति शास्त्रमेतामसि द्रव्याणि दीप इव** || {लघुजातक १/२ }भारतीय ज्ञानपरम्परा प्राच्य विद्याओं के पोषक दर्शन शास्त्र है | यही कारण है, कि ज्ञान को अगर किसी कसौटी पर जांचना – परखना है तो, दर्शन शास्त्र की कसौटी में जांचा परखा जाता है | इसी नियम के अनुसार ज्योतिष शास्त्र को भी इसी दृष्टि के अनुसार दर्शन शास्त्र अपनी कसौटी में जांचता- परखता है |

दर्शन शास्त्र के अनुसार आत्मा अजर-अमर है , इसका नाश कभी भी नहीं होता | यह केवल कर्मों के अनादि प्रवाह के कारण अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है | प्राणी मात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्व , नित्य एवं चैतन्य है, और केवल कर्मानुबन्ध के कारण यह परतंत्र एवं विनाशी दिखाई देता है |

कर्मों को करने के बाद अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप से मिलने वाले फल से अनुबंधित होना कर्मानुबन्ध कहलाता है | यद्यपि आत्मा साक्षात् कुछ भी नहीं करता | किन्तु आत्मा से चेतना पाकर जड , मन एवं, इन्द्रियां सभी कर्मों को करती है | यद्यपि आत्मा का सम्पर्क न हो , तो शरीर जड़ या शव की अवस्था में चला जाता और तव कर्म करने का प्रश्न ही नहीं उठता | इसलिए मन एवं, इन्द्रियों द्वारा कर्म करने का मुख्य कारण आत्मा का सम्पर्क है , जो इन्हें चेतना प्रदान कर सक्रिय करता है , अत; मन एवं इन्द्रियों के द्वारा किये जाने वाले कर्म का उपचार आत्मा कर्ता है और किये गए कर्मों के फल का उपभोक्ता है |

4.4 ग्रह प्रभाव-

"यत ब्रह्माण्डे तत् पिंडे" इस सिद्धांत ने न केवल दार्शनिक पक्ष को सिद्ध किया अपितु ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत ज्योतिरपिंन्डों के प्रभाव को भी सिद्ध किया | इसलिए विद्वानों ने कहा है कि –**"ग्रहे व्याप्तमिदं सर्वं त्रेलोक्यसचरारम्"**{ना.महापुराण/ना. पञ्च रात्र }

आकाशस्थित ग्रहों नक्षत्रों पिण्डों का सीधा सम्बन्ध पृथ्वी पे विद्यमान समस्त जड़ चेतन सत्ता पे है यह सहसा प्रतीत नहीं होता है, परन्तु अविछिन्न रूप से निश्चित है | इसकी यथर्तता शास्त्रों में सप्रमाण है |

ग्रह शव्द की व्युत्पत्ति पाणनीय सूत्र में **"गृह्णातिफलदातृत्वेन जीवनित्यार्थे विभाषा ग्रह: इति"** इस सूत्र से व अच् प्रत्यय से ग्रह शव्द की निष्पति हुई |{पाणनीय अष्टाध्यायी ३/१/१४३ } महर्षि पराशर ने भी वृहत् होरा शास्त्र में कहा कि जो गतिमान हो वह ग्रह है – **"य: गतिमान् स ग्रह:"** और आगे कहा – **" विपुलकारखन्तोऽन्त्ये गतिमन्तो ग्रहा: किल"**

सभी ग्रहों में सूर्य को प्रधान ग्रह माना जाता है | इसको ग्रह राज की संज्ञा भी दी गई है | यह अपनी रश्मियों के प्रभाव से सभी ग्रहों को प्रभावित करता है | इस प्रसंग में गोल परिभाषा में आर्यभट्ट ने भी कहा है – **"भूग्रहभानां गोलार्धानि स्वछायया विवर्णानि | अर्धानि यथासारं सुर्याभिमुखानि दीप्यन्ते"**

अखिल ब्रह्माण्ड में जो प्रकाशमय ज्योतिर्पिंड दिखाई दे रहे हैं , उन सबका सम्बन्ध न केवल मानव के साथ है अपितु सम्पूर्ण जड़ –चेतन, पदार्थ, सृष्टि के साथ है – इसके उदाहरण एवं प्रमाण आप सृष्टि- उत्पत्ति के प्रसंग में देख सकते हैं कि – पञ्च महाभूतों से जगत निर्माण की प्रक्रिया ,तथा इन पञ्च महा भूतों के प्रतिनिधत्व ज्योतिष शास्त्र में पञ्च तारा ग्रह करते हैं | सूर्यसिद्धांत में कहा गया है कि- **"अग्नि सोमो भानुचन्द्रो ततस्वत्व अंगारकादय: | तेजोमुखाम्बुवातेभ्य: क्रमश: पञ्चयज्ञिरे"||**

सृष्टिसंरक्षण के प्रसंग में आचार्य सुश्रुत ने भी सूर्य – चन्द्र के प्रभाव के प्रभाव को विलक्षण रीति से स्वीकार किया है , और कहा कि जहाँ चन्द्रमा भूमि में आद्रता लाता है; वहीं सूर्य उसको अपने ताप से शोष लेता है तथा दोनों के प्रभाव से वायु रक्षा कर्ता है जो कि पञ्च महा भूतों व पञ्च तारा ग्रहों के अस्तित्व का प्रमाण है | **शीतांशु:**

क्लेदयत्युर्वी विवस्वान् शोषयत्यपि | तावुभववपि संश्रित्य वायु: पालयति प्रजा:|| {सु.सं.सूत्र.६/८} सूर्य – चन्द्र का प्रभाव समुद्र में भी देखने को मिलता है, जब पूर्णिमा व आमावस्या की वेला पे समुद्र में ज्वार-भाटा के रूप में समुद्र की लहरें उठती है | चन्द्र का सर्वाधिक प्रभाव पृथ्वी पे पड़ता है इसका एक कारण यह भी है कि चंद्रमा हमारे { पृथ्वी} सबसे निकट है | अस्तु इस कारण बहुत सारे परिवर्तन देखने को मिलते हैं चन्द्र जनित मनोरोग व अन्य व्याधि युक्त जातकों पे भी पूर्णिमा-आमा, के दिन इसका प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है , जो कि रोगोत्पत्ति या रोग वृद्धि आदि के रूप में देखने को मिलता है | यह बात बहुत सारे अनुसंधान { शोध } में भी आया है | इसका एक और उदाहरण गर्भाधारण हेतु स्त्रियों में ऋतुवति होने पर भी दिखाई देता है , इसका कारक चन्द्र और भौम है , यदि चन्द्र भौम की स्थिति अनुकूल न हो तो कही बार गर्भपात , व गर्भस्राव की भी संभावना होती है | इस प्रसंग में आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है- **"कुजेन्दुहेतु प्रतिमासतर्व:"** { वृ.जा. निषेकाध्याय } में हमारे हाईपोथैल्मस और पिट्यूटरी ग्लेनण्ड का प्रतिनिधित्व भी सूर्य-चन्द्र और लग्नेश ही करते हैं, जिसके कारण प्राय:चिकित्सा शास्त्र देखा गया है ,कि पुरुषों में भी गर्भाधान की अक्षमता दिखाई देती है | इसके अन्य ग्रह योग भी कारण होते हैं | तात्पर्य यह है कि ग्रहों का मानवों के साथ अभेद सम्बन्ध है |गर्भावस्ता से लेकर मृत्यु पर्वयंत ग्रहों के प्रभाव से प्रभावित रहते हैं | प्राय: देखने में आता है, कि एक ही परिवार के एक ही माता-पिता के कुक्ष से उत्पन्न सन्तान में भी बड़ा अन्तर होता है , कोई दुबला पतला तो कोई पुष्ट शरीर का , साथ ही रूप, रंग, बुद्धि- कुशलता अलग-अलग होती है , कालान्तर में कोई अमीर तो कोई फ़कीर | इस प्रकार की विविध भिन्नता दिखाई देती है | सुक्ष्मावलोकन से ज्ञात होता है, कि जातक के जन्म कालिक ग्रह योगों के प्रकृति वशाद व ग्रहों के बलाऽवल के

कारण उनके विशिष्ट गुणों उत्पन्न होते हैं | इसका विस्तृत अध्ययन हम आगे की इकाईयों में करेंगे |

मानव के शरीर में उत्पन्न विविध रोगों के साथ भी ग्रहों का ही प्रभाव है जैसे कि आप परिचित होंगे त्रिदोषों { वात-पित्त-कफ } से उत्पन्न बहुत रोग होते हैं अकेले वात प्रकुपित होने से अस्सी {80} प्रकार के रोग होते हैं पित्त से चालीस {40},और कफ से बीस {20}प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं |इन त्रिदोषों के प्रतिनिधित्व सूर्यादि नवग्रह करते हैं | तथा अपनी – अपनी प्रकृति के अनुसार रोग देते हैं | इसी का एक उदाहरण – **हृद्रोगस्य पाण्डुरोगस्य च कारक: सूर्य इति | "हृदरोगस्य मम् सूर्य हरिमाणम् च नाशय"** {ऋग्वेद ९/४०/११}

इसी प्रकार अनेकों रोगों के ग्रह प्रभाव देखने को मिलते हैं | इसी संदर्भ में आचार्य वाग्भट्ट ने कहा कि रोग ज्ञान में ग्रह नक्षत्रों के प्रभाव को अनुकूलता-प्रतिकूलता का विचार अवश्य करना चाहिए | हम देखते हैं , कि हमारी पृथ्वी पे कहीं वर्षा की कमी से सूखा पड़ जाता है, तो कहीं अति वृष्टि से वाढ आदि जल प्रलय होते हैं, वृष्टि इत्यादि के कारण भी ग्रह योग हैं -**चन्द्रे चन्द्रे चरेद वायु: सूर्ये सूर्ये न वर्षति | चन्द्र – सूर्य समायोगं तदा वर्षति मेघराट** || {वृष्टि प्रबोध ५/१}

साथ ही मानवों के प्रत्येक कार्यों के साथ ग्रहों का विशिष्ट सम्बन्ध हैं | प्रकृति में प्रत्येक घटना के साथ ग्रहों का प्रभाव है -वायु –भूकम्पादि अनेकों प्राकृतिक आपदाएं महामारियां इत्यादि घटनाएँ भी ग्रह प्रभावों का प्रतिफल है | To the Former Belong the Predicting Of Natural effrots As the Change Of Weather , Winds , Stroms Hurricanes, Thunders, Floods, Earthuakes and so forth Judiciry Astrology is the Witch Pretend Directed by the Star. {Encyclopedia of Britannica}

इसी प्रकार मानवों के सभी सुख-संसाधन भी ग्रहों के प्रभाव से प्रभावित होते हैं | इसी लिए हमारे पूर्वज ऋषि महर्षियों ने ग्रह प्रभावों को अपने योग – साधना तपस्या के बल से ग्रहों के विलक्षण प्रभाव का पता लगाया और शास्त्र की रचना की | जो की आज पूरे मानव जाती के लिए एक वरदान के रूप में सिद्ध है |

इन्ही प्रभावों को स्वीकार करते हुए पाश्चात्य के प्रसिद्ध वैज्ञानिक एलेन लियो महाभाग ने एस्ट्रोलोजी फॉर औल नामक ग्रन्थ में लिखा – It the Creation that the truth may be found in this Since of any Will Seek Laboriously in It , Withaout any Hate. The Result gined Form It Modaubt has Proved its hight Sentimented Percptions Of Our ancimet says. {Astrology For All}

ग्रहों के प्रभाव से न केवल चराचर जगत प्रभावित है अपितु; सर्व शक्तिमान भगवत अवतार भी ग्रहों के प्रतिनिधित्व के रूप में भी अवतरित होते हैं | इसी प्रकार के उदाहरण आचार्य पराशर ने अपने होरा शास्त्र में दिए हैं – "**सूर्यादिभ्य: ग्रहेभ्यश्च परमात्मा अंशनि: सृता:| रामकृष्णादय: सर्वे ह्ययवतारा: भवन्ति वे**" {वृ.पा.हो.शा.२/३} इसी प्रकार शास्त्रों में विविध उदाहरण मिलते हैं | जिससे ये पता चलता है कि वस्तुत:केवल मानव ही नहीं वल्कि सम्पूर्ण चराचर ग्रह प्रभाव से प्रभावित है |

ग्रह नक्षत्रों से निरन्तर निकलने वाली किरणों का प्रभाव केवल मानव पर ही नहीं अपितु वन्य,स्थल्ज,, उद्भिज , आदि सभी चराचर प्राणियों पर भी अवश्य पड़ता है | ज्योतिष शास्त्र का प्राय: सभी शास्त्रों के साथ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध है | दर्शन शास्त्र , गणित शास्त्र , खगोल, भूगोल शास्त्र , मन्त्र शास्त्र , कृषि शास्त्र चिकित्सा और आयुर्वेद शास्त्र आदि शास्त्रों के साथ ज्योतिष का सम्बन्ध मिलता है | अतएव इस शास्त्र की सर्वाधिक उपयोगिता यही है कि यह समस्त मानव जीवन के परोक्ष रहस्यों

का विवेचन करता है और मानव जीवन लीला को प्रत्यक्ष रूप में हुए दीपक की भांति प्रकट करता है |

4.5 शास्त्र उपयोगिता –

मनुष्य के समस्त शुभाशुभ कार्य ज्योतिष शास्त्र के माध्यम से ही संपादित होते हैं | व्यवहार के लिए अत्यन्त उपयोगी दिन,सप्ताह,पक्ष,मास,अयन,ऋतु, वर्ष एवं उत्सव तिथि आदि का परिज्ञान इसी शास्त्र से होता है | यदि मानव – समाज को इसका ज्ञान न हो तो धार्मिक उत्सव, सामाजिक त्यौहार , महापुरुषों के जन्मदिन , अपनी प्राचीन – गौरव गाथा का इतिहास आदि किसी भी बात का ठीक – ठीक पता न लग सकेगा और न कोई उचित कृत्य ही यथा समय सम्पन्न किया जा सकेगा और न कोई उचित कृत्य यथा समय सम्पन्न किया जा सकेगा | शिक्षित और सभ्य समाज की तो बात ही क्या , भारतीय अपढ़ कृषक भी व्यवहारोपयोगी ज्योतिष ज्ञान से परिचित हैं ; वह भली भान्ति जानता है किस नक्षत्र में वर्षा अच्छी होती है ,अत:कब बोना चाहिए जिससे फसल अच्छी हो | यदि कृषक ज्योतिष शास्त्र के उपयोगी तत्वों को न जनता तो उसका अधिकांश श्रम निष्फल जाता |

कुछ महानुभाव ये तर्क उपस्थित कर सकते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में कृषि शास्त्र के मर्मज्ञ असमय में ही आवश्यकतानुसार वर्षा का आयोजन या निवारण कर कृषि कर्म को सम्पन्न कर लेते हैं ; इस दशा में कृषक के लिए ज्योतिष के ज्ञान की आवश्यकता नहीं | पर उन्हें यह भूलना नहीं चाहिए कि आज का विज्ञान भी ज्योतिष शास्त्रका एक लघु शिष्य है |ज्योतिष शास्त्र के तत्वों से पूर्णतया परिचित हुए विना भी समय में वर्षा का ओजन और निवारण नहीं कर सकता है | वास्तविक वात यह है, कि चन्द्रमा जिस समय जलचर राशी और जलचर नक्षत्रों पे संचार करता है, उस समय वृष्टि होती है | वाराही संहिता में भी कुछ ऐसे सिद्धांत आये हैं जिनके द्वारा जलचर चांद्र नक्षत्र दिनों में वर्षा का आयोजन किया जा सकता है |

प्राचीन मंत्र शास्त्र में वृष्टि के आयोजन और निवारण की प्रक्रिया बतायी गई है, उसमें जलचर नक्षत्रों को आलोड़ित करने का विधान है सारांश यह है कि वैज्ञानिक जलचर

चन्द्रमा के तत्वों को ज्ञात कर जलचर नक्षत्रों के दिनों में उन तत्वों का संयोजन कर असमय में वृष्टि का निवारण जलचर चन्द्रमा के जलीय परमाणुओं के विघटन द्वारा संपन्न किया जा सकता है | ज्योतिष शास्त्र के अन्यतम अंग संहिता शास्त्र में इस प्रकार की चर्चायें आती है | भद्रबाहु संहिता के शुक्रचार अध्याय में शुक्र की गति के अध्ययन द्वारा वृष्टि का निवारण किया गया है | अतएव यह मानना पडेगा कि ज्योतिष तत्वों की जानकारी के विना कृषि कर्म सम्यकतया संपन्न करना संभव नहीं | अत: इन सब चर्चाओं से आप को विदित हो ही गया होगा कि ग्रहों का प्रभाव प्राणी मात्र ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण जड़,चेतन सत्ता को कितना प्रभावित करता है |

4.6 बोधात्मक प्रश्न

1. ग्रह राज की संज्ञा किसको दी गई है |

2. पृथ्वी के समीपवर्ती ग्रह कोन है |

3. मन का कारक कोन सा ग्रह है

4.पञ्च महा भूतों का प्रतिनिधित्व कोण करता है |

4.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने जाना कि किस प्रकार ग्रहों का प्रभाव इस सम्पूर्ण चरा-चर जगत पे पड़ता है | हमारे पूर्वजों ऋषि – महर्षियों आचार्यों की कठिन तप-तपस्या,साधना का प्रतिफल है ज्योतिष शास्त्र है | जिसके माध्यम से हम जीवन में घटित होने वाली सम्पूर्ण शुभाशुभ घटनाओं का बोध कर सकते हैं | मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने पर अवगत होगा कि क्यों और किस ये दो जिज्ञासाएँ उसकी प्रधान है | वह प्रत्येक वास्तु के आदि कारण की खोज कर्ता है और उसके सम्बन्ध में सभी अद्भुत बातों को जाननें के लिए लालायित रहता है | जब तक उसकी यह ज्ञान पिपासा शांत नहीं होती , उसे चैन नहीं पड़ता | फलत: आदि मानव के मष्तिष्क में भी यात्किंचिद

विकास के अनन्तर ही समय , दिशा और स्थान जिनके बिना उसका काम चलना कठिन ही नहीं , बल्कि असम्भव था ;यह निश्चित है कि किसी भी प्रकार के ज्ञान का स्रोत समय, दिशा और स्थान के बिना प्रवाहित नहीं हो सकता है इसलिए उपरोक्त जिज्ञासाओं का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र के द्वारा संपन्न होने पर ही अन्य विषयों का ज्ञान मानव को हुआ होगा | आशा है कि प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप ग्रहों के मानव जीवन में पड़ने वाले शुभाशुभ प्रभावों को जाननें में सहयता होगी |

4.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1 सूर्य

2 चन्द्र

3 चन्द्र

4 पञ्च तारा ग्रह

4.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची / सहायक पाठ्यसामग्री

1. मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}
2. चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता
3. प्रश्नमार्ग / माधव निदान
4. गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }
5. ज्योतिष तत्व /
6. भारतीय ज्योतिष { नेमि चन्द्र शास्त्री }

4.10 निबन्धातम्क प्रश्न

1.मानव जीवन में पड़ने वाले ग्रहों के प्रभाव का आधार क्या है |

2.ग्रह के प्रभाव किन-किन वस्तुओं में प्रत्यक्ष देखा जाता है |

3.वृष्टि विज्ञान में ज्योतिष शास्त्र की भूमिका को विस्तृत रूप से लिखिए

4. ज्योतिष शास्त्र की उपयोगिता और महत्व पर निबंध लिखिए

इकाई-5

ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योतिषीय प्राविधि इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विषय परिचय –
5.4 मानव जीवन की यथार्तता व क्रम प्रवाह –
5.5 जीवन के घटनाक्रम को जानने की प्राविधि –
5.6 सारांश
5.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.9 सहायक पाठ्यसामग्री
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष{**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिष शास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड की पाँचवीं इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"ग्रहों के प्रभाव को जानने की ज्योतिषीय प्राविधि है "** इस से पूर्व की इकाईयों में आपने मानव जीवन में ग्रहों के प्रभाव का विस्तृत रूप से अध्ययन किया, अब इसी क्रम में हम पढेंगे, कि ग्रहों के प्रभाव को जानने की क्या-क्या प्रविधियां है, ज्योतिष शास्त्र में इनसब के मूलसिद्धांत क्या हैं इन सभी तथ्यों का अध्ययन हम इस इकाई में करने जारहे हैं |

5.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ विषय वस्तु का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष ग्रहों के प्रभाव को जानने की प्राविधि से अवगत होंगे।
- ❖ ग्रह फल के सिद्धांतों से परिचित हो पायेंगे।
- ❖ शास्त्र की वैज्ञानिक तथ्यों से परिचित होपयेंगे।

5.3 विषय परिचय –

ग्रहों के प्रभाव को जानने के लिए हमारे ऋषियों के पास एक बहुतसूक्ष्म,विश्वसनीय एवं व्यापक साधन था ;जिससे ग्रहों के प्रभाव को सुनिश्चित रूप से जांचा और परखा जा सकता था |वह साधन था- योग ; जिसके द्वारा वे सूक्ष्म मापक एवं दूरवीक्षक यंत्रों के विना ही इस czãk.M के बारे में सब कुछ जान सकते थे , उन्हें जांच और परख सकते थे और उनका वर्गीकरण कर सकते थे |

उन्होंने योग साधना द्वारा अपनी इन्द्रियों की शक्तियों को भीतर ही भीतर उन्नत कर उन्हें इस योग्य बना लिया था , कि वे काल के उन अल्पतम क्षणों को तथा पदार्थ के उन सूक्ष्म भागों को भी जान सकते थे , जिन्हें विज्ञान के नवीनतम् उपकरण भी माप नहीं

सकते थे | अपनी इसी विशेषता के कारण वे काल की अल्प अवधियों और लोंक-लोकान्तरों को जान लेते थे; जिन्हें बड़े से बड़ा भी हमारी दृष्टि में नहीं ला सकता |

5.4 मानव जीवन की यथार्तता व क्रम प्रवाह –

इस जगत में मानव जीवन का अस्तित्व क्या है , व मानव जीवन क्या है ? इस प्रश्न का तथ्य पर आधारित तर्क संगत और यथार्थ मूलक उत्तर देने का प्रयत्न किया जाय तो यह है कि-मानव जीवन समस्याओं और संकटों की सत्य कथा है | जीवन में ऐसा कोई स्थान या क्षण नहीं जब मनुष्य को किसी न किसी समस्या या संकट से जूझना न पड़े | सारे वौद्धिक प्रयत्न और अच्छी से अच्छी व्यवस्था के वाबजूद उसके समस्या एवं संकटों का सिलसिला वना ही रहता है | जैसे हम लोग प्रतिदिन अपने घर और आफिस की कई-कई वार सफाई करते हैं और करवाते हैं , फिर वहाँ कूड़ा आ जाता है – ठीक इसी प्रकार शारिरीक , मानसिक , बौद्धिक एवं सामाजिक प्रयत्न ठठा व्यवस्था बनाने के वाबजूद भी जीवन में कभी भी समस्या तथा संकटों से मुक्ति नहीं मिलती | वस्तुत: यह जीवन का स्वभाव है, जो जीवन के साथ उत्पन्न होता है और उसी के साथ समाप्त होता है |

इन समस्याओं और संकटों के कारण और निवारण का प्रतिपादन करने वाले ऋषियों का मत है कि यह कर्मजन्य है | जैसे जन्म और मृत्यु कर्मानुबन्ध के परिणाम हैं वैसे ही जन्म से मृत्यु पर्यंत के जीवन काल में घटित घटनाएँ भी कर्मानुबन्ध के ही परिणाम हैं |

इस गम्भीर विषय को अपनी दार्शनिक शैली में स्पष्ट करते हुए हमारे ऋषियों ने इस बात को रेखांकित किया है कि- आत्मा अमर है | इसका कभी नाश नहीं होता | यह कर्मों के अनादी प्रवाह के कारण अनेका अनेक योनियों में विचरण करती है | प्राणीमात्र के शरीर में स्थित यह आत्मा नित्य , निष्क्रिय , स्वतंत्रवाशी और निर्विकार होते हुए भी कर्मबंधन के प्रभाववश , सक्रिय , परतंत्र , दुखी, जन्म, मृत्यु,ज़रा एवं व्याधियों से युक्त होता है |

वस्तुत:आत्मा का अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण सूक्ष्म शरीर कार्मण शरीर एवं भौकित शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है | जब एक समय मैं आत्मा भौतिक - शरीर का त्याग कर्ता है , तब वह सूक्ष्म शरीर में रहता है और कार्मण शरीर की सहायता से कर्मानुबन्ध के अनुसार पुन: नया भौतिक शरीर प्राप्त कर लेता है | इस प्रकार जन्म- मृत्यु का अनवरत चक्र तब तक चलता रहता है , जब तक कर्म प्रवाह रूक नहीं जाता , तब

संचित कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म- मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है – इसी को मोक्ष कहते हैं | यदि मुक्ति न हो तो जन्म – मित्यु का अनवरत क्रम प्रलय काल तक चलता रहता है | भौतिक शरीर की दो विशेषताएं है – पहली यह है कि इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कारों की निश्चित स्मृति भुला देता है और दुसरी यह कि इस भौतिक शरीर में आते ही वह निष्क्रिय होते हुए भी सक्रीय स्वतंत्र होते हुए भी परिस्थितियों से परतंत्र वाशी होते हुए दुःख दायक भावों से आक्रान्त विभु या सर्वगत होते हुए भी सीमित और निर्विकार होते, हुए भी सुख-दुःख आदि विकारों का अनुभव करने लगता है | नित्य शुद्ध एवं वुद्ध आत्मा को इस स्थिति में पहुंचानेवाला एक मात्र कारण कर्मानुबन्ध | निष्क्रिय एवं निर्विकार होते हुए भी आत्मा का कर्मानुबन्धमें बंधने का कारण यह है कि आत्मा निष्क्रिय होते हुए भी अपने संपर्क मात्र से जड़ शरीर , इन्द्रिय एवं मन को चैतन्य प्रदान कर सक्रीय बना देता है | वास्तविकता में मन अचेतन तथा क्रियाशील है और आत्मा क्रिया शून्य तथा चैतन्य प्रदान करने वाला है |आर्थात आत्मा के संपर्क मात्र से चेतना प्राप्त कर जड़ होते हुए भी मन समस्त कार्यों को कर्ता है | यदि आत्मा मन को चेतना प्रदान न करे , तो क्रिया शील मन भी निष्क्रिय हो जाता है | इसलिए मन की क्रियाशीलता में आत्मा का संपर्क हेतु है | परिणामत: वह मन के द्वारा किये गए कर्मों का उपचार से करता है और इसलिए उन कर्मों के फल का उपभोक्ता भी है |

यदि आत्मा को कर्ता न माना जाय, तो सुख-दुःख , गति-अगति , ज्ञान –शास्त्र , जन्म मृत्यु और बंधन मोक्ष आदि कुछ भी नहीं होगा | अत: वैदिक दर्शन के सभी ऋषियों एवं आचार्यों ने कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद जैसे कालजयी सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हुए आत्मा को कर्ता माना है | इनके मतानुसार आत्मा निमित है | किन्तु जैसे कुम्हार के बिना मिटटी , डंडा एवं चाक आदि रहने पर भी घड़ा नहीं बनता या राजमिस्त्री के बिना ईंट , सीमेंट , लोहा , करनी – वसूली आदि के होने पर भी मकान नहीं बनता | ठीक उसी प्रकार मन , बुद्धि एवं इन्द्रियों के समूह मात्र से कोई कर्म नहीं होता | इन सब को सक्रिय करने वाला आत्मा है | जैसे बिजली के संपर्क से विद्युत उपकरण अपना निहित कार्य करते हैं | इसलिए मन , बुद्धि एवं इन्द्रियय़ों के द्वारा किये गये कर्मों का करता आत्मा है |

5.5 जीवन के घटनाक्रम को जानने की प्राविधि –

आत्मा के द्वारा जन्म – जन्मान्तरों में किये गये शुभ एवं अशुभ कर्मों के परिणाम स्वरुप उसका जन्म होता है और कर्म – फल भोगने के लिए यह जीवन मिलता है | उसको इस जीवन में किस क्रम से कब-कब , कैसे-कैसे और क्या क्या मिलेगा ? इस सब घटनाक्रमों को जानने का विश्वसनीय एवं एकमात्र साधन है –ज्योतिष शास्त्र | जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थों का बोध करा देता है ; ठीक उसी प्रकार यह शास्त्र जन्म-जन्मान्तरों में किये गये शुभ- अशुभ कर्मों का इस जन्म में मिलने वाले परिणामों को हृदयंगम करा देता है | इसलिए सारांश में कहा जा सकता है कि जीवन का घटनाक्रम जन्म-जन्मान्तरों में किये गए कर्मों का प्रतिफल है और उसे ही सही रूप से जानने का साधन ज्योतिष शास्त्र है | जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्म तीन प्रकार के होते हैं – {१} संचित, {२ }प्रारब्ध , एवं { ३] क्रियमाण | इन कर्मों के फल को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्तक पराशर, गर्ग , एवं जैमिनी प्रभृति महर्षियों ने तीन प्रविधियों का आविष्कार एवं विकास किया | यथा – संचित कर्मों के फल जानने के लिए योग पद्धति, प्रारब्धकर्मों का फल जानने के लिए दशा-पद्धति और क्रियमाण कर्मों के फल को जानने के लिए गोचर पद्धति | इस प्रकार यह शास्त्र ककुण्डलीकी ग्रहस्थिति एवं ग्रहयोगों के द्वारा संचित कर्मों के फल का , दशा –अंतर्दशा आदि के द्वारा प्रारब्ध कर्मों के फल का और गोचर द्वारा क्रियमाण कर्मों के फल का विचार कर्ता है | तात्पर्य यह है कि ज्योतिष शास्त्र इस जन्म और अन्य जन्मों के समस्त कर्मों को उक्त तीन वर्गों का उपभोग कर्ता है |

फल

संचित फल	प्रारब्ध फल	क्रियमाण फल
प्राविधि	प्राविधि	प्राविधि
ग्रह योग	दशा	गोचर

दशा

विंशोतरी	अष्टोतरी	योगनी	अन्य

गोचर

दीर्घकालीन	तात्कालीन
ताजिक	रशिचार ,नक्षत्र चार , अष्टक वर्ग , प्रश्न

5.6 फल और उसके भेद- सामान्यतया जिसे फल या कर्म फल कहा जाता है – वह जीवन का घटनाक्रम ही है |जीवन में जो – जो घटनाएँ जब-जब और जैसी-जैसी घटित होती है – वे सब कर्मफल के ही परिणाम हैं | इसलिए जीवन के घटनाक्रमों को फल कहते हैं और ज्योतिषशास्त्र उसको जानने के नियमों सिद्धन्तों ,प्रविधियों एवं पद्धतियों से हमें परिचित कराता है | ज्योतिष शास्त्र में कर्म फल का निर्धारण करने के लिए यह फल पांच प्रकार का मना गया है- १सामान्यफल , २ योगफल ,३ स्वाभाविक फल {आत्मानुभावानुरुपी}फल ,४ दशाफल,५ गोचर फल |

5.6.1 सामान्यफल- ग्रहों का जो फल सभी जातकग्रंथों में दिया गया है उनको चालीस प्रकार की स्थिति , युति, दृष्टि, बल एवं अवस्था आदि के अनुसार निर्धारित किया जाता है – वह सामान्य फल कहलाता है | यह फल ४० सामान्य आधारों द्वारा निर्णीत होता है | इस फल के निर्णायक आधार हैं- १-परमोच्च,२-उच्च ,३-आरोही,४-अवरोही,५-परमनीच ,६-नीच , ७-मूलत्रिकोण,८- स्वगृही ,९-मित्र ग्रही, १०-अति मित्र गृही,११- समगृही,१२-शत्रु गृही , १३- अतिशत्रु, १४-उच्चनवांश ,१५-नीचनवांश,१६-वर्गोत्तमस्थ ,१७- शत्रु नवांश,१८-शुभ षष्ट्यांश , १९-पाप षष्ट्यंश ,२०-परावातंशस्थ ,२१-क्रूर द्रेवेश काण ,२२-शुभ द्रेवेश्काण ,२३-उच्चस्थ, २४-नीचस्थ के साथ ,२५-शुभ ग्रह के साथ .२६-पाप ग्रह के साथ .२७-शुभ दृष्ट ,२८-पाप दृष्ट ,२९-स्थानबल,३०- दिग्बल , ३१, काल बल, ३२- चेष्टावली ३३- भाव वाली , ३४-क्रुराक्रांत ,३५- निर्बल ,३६- मार्गी,३७-वक्री , ३८- अवस्थानुसार , ३९-राशि में स्थित वश , एवं ४०- भाव में स्थित वश |

5.6.2 योग फल – ग्रह योग को ज्योतिष की आम बोलचाल की भाषा में योग कहा जता है | यह ग्रह योग का पूर्व-पद्लोप होने से बना है | यह फल विशेष फल है | क्यूँ कि जिस जातक { व्यक्ति } की कुंडली में जो – जो योग होते हैं – उन उनका फल उस व्यक्ति को उन ग्रहों की दशा – अन्तरदशा में मिलता है |इन योगों के आधार पर इन योगों के कारक ग्रहों कि दशा –अन्तर्दशा में मिलने वाला फल योग फल कहलाता है|

5.6.3 स्वाभाविक { आत्मभावानुरूपी} फल- ग्रहों के सामान्य फल एवं योग फल में बहुधा विरोधा भास मिलता है | क्यूंकि कोई ग्रह उच्च राशि में होते हुए नीच नवांश में और मित्र राशि में होते हुए शत्रु नवांश में हो सकता है | इसी प्रकार केन्द्र स्थित होने के कारण पंचमहापुरुष योग बनाने के साथ –साथ रिका योग या केमद्रुम योग बना

सकता है और किसी भी कुण्डली में मलिका योग के साथ – साथ काल सर्प योग भी बना सकता है |

सामान्यफल एवं योग फल के इन विरोधाभासों को ध्यान में रख कर ग्रहों के यथार्थ फल का निर्धारण करने के लिए उनके स्वाभाविक फल का विचार विंशोतरी दशा के आधार पर किया जाता है | ग्रहों के स्वाभाविक फल की यह विशेषता है कि उसमें परिवर्तन तो होता है ; किन्तु वह सकारण होता है और उसकी तर्कसंगत व्याख्या की जा सकती है | ग्रहों के सामान्य एवं योगफल में जैसा सांयोगिक विरोधाभास है , वैसा उनके स्वाभाविक फल में नहीं मिलता |

स्वाभाविक फल में विरोधाभास लगता है पर होता नहीं ; जैसे –योग कारक ग्रहों से सम्बन्ध होने पर पापी ग्रह भी अपनी दशा-अन्तर्दशा में योगज फल देते हैं | यहाँ प्रथम दृष्टि में यह लगता है कि योग कारक ग्रह की दशा में पापी ग्रह की अन्तर्दशा में योगजफल मिलना एक विरोधा भास् है ; क्यूंकि योगकारक एवं पापी ग्रह आपस में विरुद्ध धर्मी हैं | किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधाभास को दूर करने की क्षमता रखता है |

ग्रहों का आत्मभावानुरूप या स्वभावाविक फल वह फल है – जो ग्रहों के भाव – स्वामित्व, उनके आपसी सम्बन्ध एवं सधर्म आदि पर आधारित होता है | इस फल की यह विशेषता है कि इसमें बहुधा परिवर्तन नहीं होता | जैसे समय एवं परिस्थितियों के दबाव में कभी-कभी व्यक्ति की मानसिकता में कुछ अन्तर पड़ने के वाबजूद भी उसके स्वभाव में अन्तर नहीं पड़ता | लगभग उसी तरह ग्रहों कि स्थिति एवं बल आदि के भेद के बावजूद भी ग्रहों के स्वाभाविक फल में अनरत नहीं पड़ता |

इस स्वाभाविक फल का निर्णय करने की प्रक्रिया में कभी- कभी कुछ अन्तर दिखाई पड़ते हैं – किन्तु वे प्रक्रिया की गतिशीलता के अंग या प्रक्रिया की अवस्था के गुण धर्म हैं | वस्तुत: निर्णय की समग्र प्रक्रिया से निकलकर निर्णीत होने के बाद ग्रह का स्वाभाविक फल नहीं बदलता | यह अलग बात है कि स्वाभाविक फल जब मिश्रित के रूप में निर्णीत हो, तो कुछ लोग उसमें विरोधाभास की कल्पना कर पारस्परिक विरोध खोजने लग जाते हैं | किन्तु मिश्रित फल कि प्रकृति ही मिली-जुली होती है | और उसमें भी मिश्रण एक सुनिश्चित मात्रा में होता है और उसकी मात्रा तर्क पर आधारित होती है

न की दशा में पापी ग्रह की अंतर्दशा में योगफल मिलना एक विरोधाभास है; क्यूंकि योगकारक एवं पापी ग्रह आपस में विरूद्ध धर्मी हैं | किन्तु वास्तविकता में इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध इस विरोधा बहस को दूर करने की क्षमता रखता है |

5.6.4 दशा फल –फलादेश की प्रक्रिया में दशाफल की निर्णायक भूमिका होती है | यह फल दशा पर आधारित होने के कारण दशा फल कहलाता है | व्यक्ति को उसके जीवन में ग्रहों का फल कब – कब मिलेगा ? इसका ज्ञान करने के लिए दशा पद्धति का विकास किया गया है |

पराशर एवं अन्य आचार्यों के होरा ग्रंथों में दशाओं के अनेक भेद मिलते हैं इनमें नक्षत्र दशा के दश भेद प्रमुख हैं – १- विंशोतरी दशा, २ –अष्टोतरी दशा ,३-षोडशो तरी दशा, ४-द्वाद्शोतरी दशा ,५-पंचोतरी दशा ,६-शताव्दिका दशा .७- चतुरशीतितमा दशा , ८-दिप्रति दशा ,९-षष्टीहायानि दशा , और १०- त्रिंशतसमादशा | इसके अलावा कालचक्र आदि दशा का वर्णन फल की सूक्ष्मता एवं निश्चितता के लिए किया जाता है | महर्षि जैमिनी ने राशियों की दशा के साथ-साथ मण्डूक, रूद्र, ग्रह ब्रह्म ग्रह एवं शूल ग्रह आदि की दशा का भी विचार किया है |

मनुष्य को प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिए जो जीवन मिला है , उसके शुभाशुभ घटना को जानने के लिए भारतीय ज्योतिष शास्त्र में दशा पद्धत्ति का उपयोग किया जाता है | इन दशाओं में से विंशोत्तरी दशा उत्तर भारत , अष्टोत्तरी दशा गुजरात, महाराष्ट्र सहित दक्षिण भारत में और योगनी दशा गढवाल कुमाऊं हिमाचल जैसे पर्वतीय प्रदेशों में प्रचलित है |

सारांश यह है, कि जन्म कुण्डली के योगों का मनुष्य को अपने जीवन में कब-कब और क्या-क्या अच्छा या बुरा फल मिलेगा ? इसको पहले से जननें या पूर्वानुमान करने की सशक्त एवं सक्षम प्राविधि को दशा कहते हैं और दशा , अंतर्दशा ,प्रत्यन्तर दशा सूक्ष्म दशा एवं प्राण दशा के माध्यम से व्यक्ति के जीवन के घटनाक्रमों का निर्धारण किया जता है या यूँ कहें कि ग्रहों के प्रभाव को जाना जा सकता है |

5.6.5 गोचर फल – ग्रहों को राशि एवं नक्षत्रों के आधार पर निर्णीत फल , गोचर फल कहलाता है | यह क्रियमाण कर्मों के फल के सूचक होने के कारण हमारे वर्तमान जीवन

से जुदा हुआ है और इसलिए मनुष्य अपने जीवन में जो कुछ कर रहा है या करेगा / उस सब का परिणाम जानने और पहचानने में गोचर फल की प्रमुख भूमिका होती है |

यह गोचर दो प्रकार का होता है – १- दीर्घकालिक एवं २- तात्कालिक | दीर्घकालिक से तात्पर्य एक वर्ष के भीतर के घटनाक्रम से है | इस घटना चक्र को जानने का साधन ताजिक शास्त्र है | इसके नुसार वर्ष कुण्डली, त्रिपताकीचक्र , मुंथा , मुद्दा दशा, वर्षेश,एवं इत्थशाल आदि षोडश योगों के माध्यम से एक वर्ष के भीतर के घटित घटनाक्रम की जानकारी मिल जाती है |

एक वर्ष के भीतर किस दिन घटना घटेगी ? इसका निश्चय तात्कालिक गोचर द्वारा किया जता है | तात्कालिक गोचर चार प्रकार का होता है – १- राशि , २- नक्षत्रचार, ३- अष्टक वर्ग , ४- प्रश्न | इस प्रकार रशिचार , नक्षत्र चार , अष्टक वर्ग एवं प्रश्न कुण्डली के अनुसार एक वर्ष के भीतर कब – कब कौन-कौन सी अच्छी या बुरी घटना घटित होगी ? इसका विचार एवं निर्णय किया जाता है |

वस्तुत: जीवन की प्रत्येक घटना आंशिक रूप से प्रारब्ध और आंशिक रूप स्वतंत्र इच्छा शक्ति से प्रभावित होती है | अत: इसका ज्ञान एवं पूर्वानुमान दशा और गोचर – इन दोनों के आधार पर किया जाता है |

5.7 जीवन की समस्याओं का कारण और उसका निर्धारण –

वस्तुत: मानव – जीवन की समस्या एवं संकटों की सत्य कथा है | मनुष्य अपनी पूरी बुद्धि एवं शक्ति लगाकर केवल निश्चिन्तता , शांति और संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है | किन्तु वह उसको मिलती नहीं | मानव-जीवन में सुख एवं सुविधा जुटाने के लिए आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान ने भगीरथ प्रयत्न किया है ;किन्तु इसका परिणाम क्या है ? इससे हम और आप सुपरिचित हैं | जैसे-जैसे आधुनिक ज्ञान एवं विज्ञान ने नयी-नयी खोजों के साथ प्रगति की है वैसे-वैसे मानव की सुख एवं सुविधाओं की आकांक्षाएं अवश्य बढ़ी है | किन्तु उसके हाथ में ढाक के तीन पात के अलावा कुछ नहीं आया |

वस्तुत: किसी भी समस्या के समाधान के लिए उसके सही – सही कारण का जानना आवश्यक है | जब तक समस्या के वास्तविक कारण का निर्धारण नहीं हो जाता , तब

तक उसका निवारण नहीं हो सकता | इसलिए जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं एवं संकटों के समाधान के लिए उनके सही कारण का विचार करना आवश्यक है –

वैदिक विचारधारा एवं प्राच्य – विद्याओं के अनुसार जीव के जन्म-मृत्यु या बार-बार विविध योनियों में जन्म का कारण कर्मानुबन्ध है | कर्मानुबन्ध को भोगने के लिए जीव को बार- बार जीवन मिलता है | इसलिए जीवन की प्रत्येक अच्छी या बुरी घटना का कारण कर्मानुबन्ध है |

इस कमानुबन्ध में संचित , प्रारब्ध एवं क्रियमाण त्रिविध कर्म होते हैं | जीवन में जो कुछ भी ईष्ट या अनिष्ट , अच्छा या बुरा और समस्या या संकट दिखाई पड़ रहा है | उसका कारण त्रिविध कर्म है | इन त्रिविध कर्मों के परिणाम या फल को वैदिक ज्योतिष में प्रति – पादित योग दशा एवं गोचर की प्राविधि से जाना जाता है | अत: ज्योतिष शास्त्र जीवन की समस्या और संकटों को जानने तथा उनके कारण का निर्धारण करने में हमारी सर्वाधिक सहायता करता है |

5.8 अभ्यासात्मक प्रश्न

1. ज्योतिष शास्त्र में कर्म फल का निर्धारण करने के लिए कितने प्रकार बताये गए हैं |

2. जन्म-जन्मान्तरों में अर्जित कर्म कितने प्रकार के होते हैं |

3.गोचर कितने प्रकार का होता है |

4.सामान्य फल कितने प्रकार का होता है |

5.9 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत हमने अध्ययन किया, कि कैसे ग्रह अपना प्रभाव व फल देते हैं | वस्तुत: ज्योतिष शास्त्र एक दीपक की भाँती हमें हमारे पूर्वार्जित शुभाशुभ कर्मों के आधार पर फल कथन करता है | फल परिपाक की प्राय: सभी विधियों – प्रविधियों का हमने इस इकाई के अन्तर्गत अध्ययन किया | आशा है , कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप ग्रह फल प्राविधि का बोध सम्यक रूप से कर पायेंगे |

5.9 अभ्यासात्मक प्रश्नों के उत्तर

1.पाँच प्रकार

2. तीन प्रकार

3. दो प्रकार

4.चालीस प्रकार

5.10 संदर्भित ग्रन्थ

1. **वेदों में विज्ञान**, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
2. **बृहज्जातक**, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
3. **फलदीपिका**, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
4. **लघुजातक**, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. **भावप्रकाश**, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोष:, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी

5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

6.ज्योतिष एवं रोग , प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी

5.9.4 निबन्धात्मक प्रश्न

1 .ग्रह फल के कितने प्रकार हैं विस्तृत वर्णन कीजिए |

2.दशा फल प्रक्रिया का आधार क्या है |

इकाई- 6 रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकारण

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3विषय परिचय
6.4रोग परिज्ञान के उपकरण
6.5रोग ज्ञान के उपकरण
6.5.1 स्थान से बननेवाले योग –
6.5.2 भाव से बनने वाले योग
6.6 .1योग एवं उसके भेद
6.6.2स्थान एवं भाव से बनने वाले योग
6.6.3स्थान , भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग
6.6.4योगों के प्रमुख तीन तत्व
6.6.5ग्रह
6.6.6 रोग विचार में ग्रहों का परिचय
6.6.7 ग्रहों की राशियाँ
6.6.8ग्रहों की उच्च , नीच एवं मूल त्रिकोण राशि
6.6.9 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध
6.6.10 ग्रहों के बल
6.7 सारांश
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री
6.10निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष{**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड की षष्ट {छटवीं}इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण "**है इससे पूर्व की इकाई में आप ने ग्रह फल के विविध प्रविधियों के बारे में जाना,तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव -जगत पर पड़ता है | अब इसी क्रम में हम येजानेंगे, कि रोग एवं रोगी का परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कैसे किया जाता है | और इसके क्या – क्या ज्योतिषीय उपकरण होते हैं | इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे |साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने काप्रयत्न करेंगे |

6.2उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष में रोग व रोगी के परीक्षण के मुख्य आयामों से परिचित होंगे |
- ❖ साथ ही आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।
- ❖ ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग कैसे उत्पन्न होते हैं |
- ❖ साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे |

6.2विषय परिचय –

हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार,जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है , उसे रोग कहते हैं | इन रोगों की उत्पत्ति के कारण,लक्षण भेद एवं तदशमनोपाय{चिकित्सा }विधि तभी सही तरह से सफल हो पायेगा , जब रोग

का परीक्षण सही तरह से करपायेंगे | आयुर्वेद में भी भगवान घनवनन्तरि ने आचार्य सुश्रुत से कहा ,कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहिले वैद्य को रोगी की आयु का परीक्षण कर लेना चाहिए | क्यूंकि आयु के शेष होने पर ही चिकित्सा द्वारा वह ठीक हो सकता है | यदि आयु शेष हो तो रोग,ऋतु { मौसम } वय, बल एवं औषधि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए | यही बात ज्योतिष शास्त्र में भी जोर दे कर कही गई है कि आयु का परीक्षण पहले भलीभांति कर लेना चाहिए |

आयु: पूर्वं परीक्षेत पश्चालक्षण मादिशेत | अनायुषाम् तु मर्त्यायानं लक्षनै किं प्रयोजनम् ||सु.सं.सूत्रस्थान २५/४/१०

आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना | स्वस्थमुदिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्यम् ||प्रश्न मार्ग ९ /३-५

6.3रोग परिज्ञान के उपकरण –

जैसे कि पूर्व की इकाईयों में भी चर्चा हुई है ,कि अनुचित कर्म के फल स्वरुप रोग पैदा होते हैं , वे कर्म चाहे इस जन्म के हो या जन्म जन्मान्तरों के | इस जन्म के अनुचित कर्मों को आहार-एवं विहार की अनियमितता कह सकते हैं , जब कि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को परम्परया अशुभ या पाप कर्म कहा जाता है|

क्यूंकि जन्म-जन्मान्तरों से वर्तमान जीवन के आज और भविष्य तक के सभी कर्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है , जिसका विस्तृत अध्ययन आप ने पिछली इकाइयों में किया , फिर भी प्रसंग वश देखिये – संचित , प्रारब्ध, एवं क्रियमाण | तथा इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिष शास्त्र में तीन प्रविधियां अविष्कृत एवं विकसित की गयी है | अत: रोगों के परिज्ञान के मुख्यत: तीन उपकरण माने जाते हैं -१ योग २ दशा एवं ३ गोचर | होराशास्त्र की यह मुख्य विशेषता है, कि जन्म – जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का इस जन्म में कब – कब क्या-क्या और कैसा

– कैसा फल मिलेगा ? इसको यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार साफ-साफ बता देता है , जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थ का ज्ञान होराशास्त्र में प्रति पादित , योग दशा एवं गोचर की विधी से किया जाता है | लघुजातक में भी कहा गया है – **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम् | व्यन्जयती शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव** || {लघुजातक अ.१/श.२ }

6.4रोग ज्ञान के उपकरण –ग्रह योग-

पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का परिज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित ग्रह योगों के द्वारा किया जाता है | यथा – सूर्य आदि ग्रह मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं | जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पाप प्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते हैं तब वह शरीर के जिस अंग धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते हैं , उसमें विकार या रोग की सूचना देते हैं | किन्तु जब वे ही ग्रह इष्ट स्थान एवं शुभ प्रभाववश शुभ हो जाते हैं , तब वे शरीर के उस अंग , धातु एवं दोष आदि के द्वारा आरोग्यता की सूचना देते हैं | इस प्रकार ग्रह योगों के माध्यम से यह शास्त्र विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विचार करने कि सशक्त एवं समर्थ प्रविधि बताया है |

6.5 योग एवं उसके भेद –

ग्रह योगों को ज्योतिषीय भाषा में योग कहा जाता है | यह मनुष्य को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलता है ,इसलिए योग कहलाता है | प्रश्न मार्ग में इसका उदाहरण इस प्रकार से मिलता है –**ग्रहाणां स्थिति भेदेन पुरुषान योजयन्ति हि | फले: कर्म समुदभूतेरीति योगा: प्रकीर्तितिता :**||[प्रश्न मार्ग अ.९ श्लो. ४८] वस्तुत: योग पूर्वार्जित कर्म को उसके फल से जोड़ने वाला सेतु है |यह योग ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थित या परस्पर युति के द्वारा बनता है |ग्रह , राशि एवं भाव – इन तीनों तत्वों के

द्वारा बनने वाले योग –आधार के भेद से सात प्रकार के होते हैं | प्रश्न मार्ग अ.६ श्लोक ४९-५० यथा – १.स्थान ,२- भाव,३-ग्रह,४- स्थान, एवं भाव, ५- स्थान एवं ग्रह , ६- भाव एवं ग्रह, ७- स्थान भाव एवं ग्रह |

6.5.1 स्थान से बननेवाले योग –

मेष आदिद्वादश राशियों , उनके भेद –{चार,स्थिर,दिस्वभाव,,उच्च, नीच ,मूलत्रिकोण,स्वराशि ,एवं शत्रु राशि आदि | }और राशियों के वर्ग –{लग्न , होरा, द्रेस्काण , सप्तमांश , नवमांश,दशांश, द्वादशांश,त्रिंशांश, षष्ट्यअंश एवं पारिजातादि |} को ग्रहों का स्थान कहा जाता है | इनसे बनने वाले योगों को स्थान से बनाने वाले योग कहा जाता है , जैसे –

{अ.}मिथुन लगन में उत्पन्न व्यक्ति भोगी ,बन्धुरत , दयालु धनवान एवं रोगी होता है | {जातक पारिजात अ.९ श्लो.१०६ }

{आ }वृश्चिक के नवमांश में उत्पन्न व्यक्ति दु:खी दरिद्री दुर्बल .....एवं रोगी होता है |जा.पा.९/९७

6.5.2 भाव से बनने वाले योग-

जन्म कुण्डली से प्रारम्भ कर १२ भाव होते हैं,जिनके नाम हैं –१-तनु २-धन ,३-सहज,४-सुख , ५- पुत्र, ६-रोग,७-जाया,८-मृत्यु,९-धर्म,१०-कर्म,११-आय एवं १२ व्यय | इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण , पणफर , आपोक्लीम,त्रिक,त्रिषडाय, मारक,उपचय,एवं अनुपचयकहते हैं इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहा जाता है , जैसे **अ.**चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश में कोई ग्रह न हो , तो कम द्रुम योग होता है |{वृ.जा.१३/६}

{ आ } लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो , तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है |{वृ.जा.५/१}

6.6 ग्रहों से बनने वाले योग –

होरा शास्त्र ने शुभ एवं अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गए हैं| इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रह योग कहा जाता है , जैसे

{अ.} जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्ण कला वाला हो वह राजा बनता है |{जातक पारिजात ७/३८ }

{आ.}केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से राजयोग कारक होते हैं | {लघु पारशरी १४-१५}

6.6.1 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग –जातक ग्रंथों में स्थान एवं भाव से बनने वाले योग पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं |इन योगों में स्थान एवं भावों का दोनों का समान रूप से महत्व होता है , जैसे-

{अ.}सप्तम स्थान में द्विस्वभाव राशि हो , तो शात्रों द्वारा किये गए अभिचार { तन्त्र क्रिया } से रोग होता है | जा.पा.६/७७

{आ.}दुसरा उदाहरण देखें – मेष लग्न में उत्पन्न – व्यक्ति बन्धु –द्वेषी, दुर्बल – शरीर ,क्रोधी , मानी , पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है |जा.पा.९/१०५

6.6.2 **भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग** –भाव में ग्रहों की स्थिति या भाव पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले योगों को – भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग कहा जाता है | इन योगों में भाव एवं ग्रह इन दोनों का सामान महत्व होता है |

उदाहरण –

{अ.} लग्न में मंगल हो और षष्ठेश दुर्वल हो , तो जातक को अजीर्ण गुल्म एवं शूल रोग होता है |

{आ} पापग्रह एवं राहू के साथ चन्द्रमा ५,८ या १२ वें भाव मे हो ,तो जातक पागल एवं क्रोधी कलह प्रिय होता है | {जा.पा. ६/८३ }

6.6.3स्थान , भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग –ज्योतिष शास्त्र के होरा ग्रंथों में स्थान , भाव एवं ग्रह इन तीनों का सामान रूप से महत्व होता है | और ये तीनों मिलकर विशेष प्रकार के फल की सूचना देते हैं | { अ.} कर्क लग्न में चंद्रमा एवं गुरु हो , केन्द्र में बुध एवं शुक्र हो तथा शेष ग्रह त्रिषडाय में हो –तो जातक की अमित आयु होती है | {सारावली अ. १०/ ७४ }

6.6.4योगों के प्रमुख तीन तत्व –जीवन के घटनाचक्र , जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है , इसका विचार विचार करने का मुख्य उपकरण योग है | जातक ग्रंथों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व प्रमुख होते हैं – १-ग्रह, २- राशि, एवं ३- भाव |

ज्योतिषशास्त्र के होरा ग्रंथों में ग्रहशील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री ,उनकी दृष्टि , उनके षड्बल उनका शुभाशुभ , उनकी षड् अवस्थावों एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है | इन सबकी जानकारी होरा ग्रंथों से कर लेनी चाहिए | जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं , वो होरा ग्रंथों से लिए गये हैं | किसी भी योग चाहे वो भाव से बनने वाला हो या स्थान से उसकी पुष्टता,ग्रहों के या भाव के बलाबल से अवश्य कर लेनी चाहिए फलकथन से पूर्व कि क्या वह योग प्रबल है ,कि नहीं |

उपरोक्त उपकरण ही प्रमुख हैं रोग व रोगी के परीक्षण हेतु इन उपकरणों के आधार पर हम रोग विषयक तत्वों का पता लगा सकते हैं, कि किसी जातक का कोन सा योग है जो कि रोग उत्पन्न कर सकता है ? कोई भी शुभाशुभ योग अपनी भुक्ति {दशा -अन्तर -दशा } में ही फल देता है |

ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने के लिये जितने योग बताए गए हैं , उनमें तीन तत्व प्रधान हैं -१- ग्रह , २- राशि, ३- भाव | अत: ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों

का विस्तार से विवेचन करने के पूर्व उक्त ग्रह , राशि एवं भाव का विचार अवश्य कर लेना परमआवश्यक है |

6.6.5 ग्रह - ज्योतिष शास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक कुल नव {९} ग्रह माने गए हैं ,जैसे – १-सूर्य,२-चन्द्र,३-भौम,४-बुध,५-गुरु, ६-शुक्र ,७- शनि ,८-राहू , ९- केतू | उक्त ग्रहों में राहू तथा केतू – ये दोनों छाया ग्रह हैं | अन्य ग्रहों की भान्ति सौरमंडल में इनका ज्योतिषपिण्ड { चमकीला बिम्ब } दिखाई नहीं देता | शेष अन्य सात ग्रहों के ज्योतिष पिण्ड सौर मण्डल में अपनी – अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखाई देते हैं | यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रंथों में राहू – केतू को गढ़ नहीं माना गया है तथापि शास्त्र में इनके महत्व को स्वीकार कर इन्हें ग्रहों के साथ सम्मलित किया गया है |

आधुनिक काल में पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने सौरमंडल में हर्शल , नेपच्यून एवं प्लेटो नामक तीन अन्य ग्रहों की खोज की है | पाश्चात्य ज्योतिष ग्रंथों में इन ग्रहों के प्रभाव का भी उल्लेख नहीं है | अत: इस पाठ्यक्रम में केवल नव ग्रहों के आधार पर ही रोग का विचार किया गया है |

6.6.6 रोग विचार में ग्रहों का परिचय कोन सा ग्रह किस तत्व का प्रतिनिधित्व करता है ? उसका कद एवं रंग कैसा है ? वह शरीर के किन -किन अंगों को प्रभावित कर्ता है ? और वह किन- किन रोगों को उत्पन्न कर सकता है ? इन बातों का विचार ज्यतिष ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है | {फलदीपिका मोतीलाल वनारसी दास ,दिल्ली अ.१४/श्लोक ७५-८१ }

सूर्य –यह अग्नि तत्व तथा माध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है | यह मनुष्यों के {पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बांयें } नेत्र, आयु , अस्थि, शीर्ष ,हृदय , प्राण शक्ति, मेदा ,रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर हड्डियां मजबूत होती

है तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है | और इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय , पित्त प्रकोप नेत्र रोग, अस्थि रोग , शिरोरोग , हृदय रोग , उषण वात , ज्वर, मूर्छा , चर्मरोग , मृगी एवं शूल रोग होता है |

चन्द्र –यह जल तत्व तथादीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है | यह मनुष्यों के{ पुरुषों के बांयें तथा स्त्रियों के दांयें } नेत्र, स्तन ,वक्ष,फेफड़ा, मन, मष्तिष्क , उदार , मूत्राशय , रक्त , रस-धातु शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर शरीर में रक्त संचार ठीक बना रहता है , आरोगवृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है | इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक होने पर कफ रोग , मूत्र विकार , जलोदर , मुख रोग , नासिका रोग , पाण्डु रोग , क्षय रोग मन्दाग्नि , अतिसार , स्त्रीसंसर्ग जानी रोग , प्रदर रोग अपस्मार , वात एवं मानसिक रोग

भौम- यह अग्नि तत्वतथा सामान्य कद्वाला शुष्क ग्रह है | यह शरीर के कपाल , कान , स्नायु, जननेंद्रिय , मज्जा,पुठों की पुष्टता , शारीरिक पुष्टता , दाह , शोथ , धैर्य एवं पित्त को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियां मजबूत होती है | यह निर्बल , अशुभ या रोग कारक हो तो रक्त विकार , रक्तचाप , फोड़ा-फुंसी खाज सूजन , चोट , रक्तस्वाव कुष्ठ, अग्निदाह , महामारी , गुप्त रोग , शल्य क्रिया आदि होते हैं |

बुध- यह पृथ्वी तत्व तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है | शरीर में यह जिह्वा , वानी , स्वर चक्र , स्वास्नली, अगल मस्तिष्क , केश , मुख, हाथ, एवं त्रिधातु को प्रभावित कर्ता है | इसके बलवान होने पर बालक का मष्तिष्क पूर्ण विकसित होता है , उसका व्यक्तित्व आकेश्क , तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है | इसके निर्बल या रोग कारक होने पर मूर्छा , हिस्टीरिया , मानसिक रोग चक्कर आना , न्यूमोनिया, विषमज्वर , त्रिदोष ज्वर , इत्यादि रोग होते हैं |

गुरु – यह आकाश तत्व { मतान्तर से वायु तत्व } तथा मध्यम कद {मतान्तर से ह्रस्व कद } वाला जलीय ग्रह है | शरीर में चर्वी, वीर्य , उदार, यकृत, रक्त – धमनी , त्रिदोष तथा कफ को प्रभावित कर्ता है | इसके बली होने पर शरीर पुष्ट , होता है, विचार शक्ति अच्छी होती है, तथा मन में शांति होती है | इसके निर्बल होने पर या अशुभ या रोग कारक होने पर उदर विकार , मज्जा दोष, यकृत दोष, प्लीहा , स्थूलता , दंतरोग, वायु विकार , मूर्छा , मष्तिष्क विकार , ज्वर, कर्ण रोग , ऊँचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव इत्यादि होता है |

शुक्र –यह जलतत्व तथा मध्यम कद वाला जलीय ग्रह है | शरीर में यह जननेंद्रिय , शुक्राणु , नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर , रस , गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर शरीर शुडोल एवं सुन्दर होता है , मनुष्य की काम शक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है | इसके निर्बल होने पर या रोग कारक स्थिति में मूत्र जन्य रोग , वीर्य विकार , गुप्त रोग स्त्री संसर्ग जानी रोग , मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकार , विष जानी विकार , प्रमेह, मधु मेह प्रदर , कफवायु , पाण्डु रोग होता है

शनि –यह वायु तत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है | यह शरीर में हड्डियां की जोड़ , पैर ,घुटने ,वात,संस्थान , स्नायु संस्थान ,मज्जा तथा बात को प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर स्नायुमंडल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है | इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने पर वायु विकार स्नायु विकार , जोड़ो का दर्द , गठिया , सन्धिवात, पक्षाघात , पागलपन,डाढ में दर्द ,अपचन , खांसी , दमा , अंग – भंग तथा निराशा जंक मानसिक रोग होते हैं |

राहू –यह वात तत्व एवं मध्यम कद वाला ग्रह है | यह शरीर में मष्तिष्क , रक्त, त्वचा , एवं वात को प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर शरीर में फुर्ती ,

ताजगी , एवं चैतन्यता बनीं रहती है | तथा इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने पर चेचक , कृमि मृगी , सर्प दंश , पशुओं से चोट , कुष्ठ , एवं केंसर,जैसे असाध्यरोग हो जाते हैं |

केतू – यह वायु तत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है | यह शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम शक्ति ,संघर्ष शक्ति , प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है | तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती , अकर्मण्यता , शरीर में चोट , घाव , चर्म रोग , जटिल रोग एवं एलर्जी हो जाती है |{प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी . विद्यापीठ }

6.6.7 ग्रहों की राशियाँ –ज्योतिष शास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रहों को मेष आदि द्वादश राशियों का स्वामी माना गया है | जैसे- सिंह राशि का स्वामी सूर्य,कर्क का चन्द्रमा, मेष तथा वृश्चिक का मंगल , मिथुन एवं कन्या का बुध , धनु तथा मीन का गुरु , वृष तथा तुला का शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशि का स्वामी शनि होते है | परन्तु परवर्ती कुछ आचार्यों ने राहू को कन्या राशि तथा केतू को मीन राशि का स्वामी मना जाता है |

6.6.8 ग्रहों की उच्च , नीच एवं मूल त्रिकोण राशि –सूर्यादि ग्रहोंकी उच्चराशियाँ – मेष,वृष,मकर,,कन्या,कर्क,मीन,तुला,मिथुन,एवं धनु मानी गई है | इन ग्रहों की नीच राशियों में भी परमोच तथा परम नीच के अंश इस प्रकार हैं –सूर्य का परमोच्च मेष के १० अंश पर,चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर मंगल का मकर के २८ अंश पर , बुध का कन्या के १५ अंश पर ,गुरु का कर्क के ५ अंश पर शुक्र का मीन के २७ अंश पर, शनि का तुला के २० अंश पर , राहू का धनु के १५ अंश पर तथा केतू मिथुन के १५ अंश पर परम नीच होता है |किन ग्रहों को किन राशियों के , कितने अंश पर मुलत्रिकोण माना गया है ?-

आईये समझते हैं –

ग्रह **मूलत्रिकोण राशि एवं अंश**

सूर्य - सिंह राशि में १ से २० अंश तक

चन्द्र - वृष राशि में ४ से ३० अंश तक

मंगल – मेष राशि में १ से १२ अंश तक

बुध – कन्या राशि १६ से २५ अंश तक

गुरु –धनु रशी में १ से २० अंश तक

शुक्र – तुला राशि में १ से २० अंश तक

शनि - कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक

पूर्वाचार्यों ने राहू एवं केतू को छायाग्रह मानकर उनकी मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि नहीं मानी है | किन्तु परवर्ती आचार्यों ने कुम्भ राशि में राहू का मूल त्रिकोण माना है | {जातक पारिजात अ.१ श्लोक२८ }

6.6.9 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध –ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध दो प्रकार का मना गया है – {१} नैसर्गिक सम्बन्ध {२} तात्कालिक सम्बन्ध | {वृहत्जातक २/१७-१८ }

नैसर्गिक दृष्टि से ये निकटता एवं दूसरी के आधार पर मित्र एवं शत्रु माने जाते हैं |

नैसर्गिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता , शत्रुता एव उदासीनता इस प्रकार से हैं –

सूर्य-इसके चन्द्रमा,मंगल एवं गुरु मित्र हैं | शुक्र एवं शनि शत्रु हैं |तथा बुध सम हैं |

चन्द्र –इसके सूर्य तथा बुध मित्र हैं | राहू शत्रु है और मंगल, गुरु,शुक्र,शनि,सम है |

भौम-सूर्य,चन्द्र,गुरु,मित्र हैं , बुध एवं राहू मित्र हैं | शुक्र एवं शनि सम हैं |

बुध- इसके सूर्य, शुक्र मित्र है , चन्द्रमा शत्रु हैं | तथा मंगल , गुरु,शनि सम है |

गुरु-सूर्य,चन्द्र,एवं मंगल मित्र हैं | बुध एवं शुक्र शत्रु हैं | तथा गुरु सम है |

शुक्र-बुध, शनि मित्र हैं | सूर्य एवं चन्द्र शत्रु हैं | मंगल एवं गुरु सम |

शनि – बुध एवं शुक्र मित्र हैं | सूर्य चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं | गुरु सम है |

राहू –इसके बुध , शुक्र, मित्र हैं सूर्य,चन्द्र, मंगल,शत्रु हैं | तथा गुरु सम है |

केतू-इसके बुध ,शुक्र, शनि मित्र हैं | सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं |

तत्कालिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का ज्ञान , उनकी निकटता एवं दूरी के आधार पर मानी जाती है | किसी भी ग्रह से २/३/४/१०/११ एवं १२ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर मित्र होते हैं तथा | १/५/६/७/८ एवं ९ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं ; एक राशि में साथ-साथ रहने पर ग्रहों में युद्ध भी होता है |{ सूर्य सिद्धांत ग्रह्युत्याधिकार श्लोक १,२०-२३}अत: एक राशि में रहने वाले ग्रह,अत्यन्त निकट होने पर भी परस्पर शत्रु होते हैं |

नैसर्गिक एवं तात्कालिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों की आपसी सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों का आपसी सम्बन्ध ५ प्रकार का हो जाता है – १- अति मित्र , २- मित्र , ३- सम, ४-शत्रु ,एवं ५- अति शत्रु जो ग्रह नैर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में स एक में मित्र तथा अन्य में सम होते हैं , आपस में मित्र कहे जाते हैं | जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं , आपस में सम कहलाते हैं | जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं , आपस में सम कहलाते हैं | जो ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से शत्रु था दूसरी दृष्टि से सम होतें हैं , परस्पर शत्रु माने जाते हैं | और जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों से आपस में शत्रु होते हैं , वे परस्पर अतिशत्रु कहलाते हैं |

महर्षि पराशर ने ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रता-शत्रुता के अलावा उनकी युति-दृष्टि आदि के आधार पर अन्य चार प्रकार के सम्बन्ध माने हैं ; जो इस प्रकार हैं –

{१} युति सम्बन्ध {२}दृष्टि सम्बन्ध, {३}स्थान सम्बन्ध एवं {४} एकांतर सम्बन्ध | एक राशि एवं एक ही भाव में साथ-साथ बैठने वाले ग्रहों में युति सम्बन्ध होता है आपस में एक दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है | तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है | तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठा हो और दूसरे सम्बन्ध होता उसे देखता हो तो उनमें एकांतर सम्बन्ध होता है | इन चार प्रकार के सम्बन्धों को सम्बन्ध चतुष्टय कहते हैं |

ये चार प्रकार के सम्बन्ध ग्रहों में सहयोग या पूरक भाव के सूचक होते हैं | तथा इन संबंधों के प्रभाव वश दोषयुक्त या निर्बल ग्रह भी बलवान होकर कारक या मारक बन जाते हैं |{लघुपाराशरी अ.२ श्लोक १}

ग्रहों की दृष्टि –ग्रहों की दृष्टि दो प्रकार की होती है १- साधारण दृष्टि या पाद दृष्टि तथा २- विशेष दृष्टि | प्रत्येक ग्रह जिस स्थान पर बैठा हो , उससे तीसरे तथा १०वें स्थान को एक पाद दृष्टि से ;५वें तथा ९ वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से देखता है |

{लघु पाराशरी २/ १} इस प्रकार ग्रह जिस स्थान में बैठा हो , उससे १/२/६/११ एवं १२ वें स्थान को छोड़कर शेष स्थानों पर उसकी साधारणतया दृष्टि रहती है | किनती सप्तम स्थान पर प्रत्येक ग्रह की पूरण दृष्टि रहती है | सूर्यादि ग्रहों में से मंगल , गुरु, एवं शनि – ये तीन इस प्रकार के हैं , जो सप्तम के अलावा अन्य स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं , यथा मंगल,७ वें स्थान के साथ – साथ चुठे स्थान एवं आठवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है |इसके अलावा गुरु ५वें और ९ वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है तथा शनि सप्तम के साथ – साथ तृतीय और दशम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है | ग्रहों की साधारण प्रभाववश तथा पूर्ण दृष्टि का प्रभाव होता है |

6.6.10 ग्रहों के बल –ग्रहों के बल छ: प्रकार के माने गये हैं – १- स्थान बल , २- दिग बल , ३- काल बल ४- चेष्टा बल , ५- दृग बल , ६- नैसर्गिक बल | { जातक पारिजात २/३८ }

{१} स्थान बल –जो ग्रह अपनी राशि , उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में हो वह स्थान बलि कहलाता है | अपने नवमांश , द्रेष्काण , या पारिजातादि वैशेषिक वर्ग में स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है | अष्टक वर्ग मं जिस राशि पर ४ से अधिक रेखाएं हो , वाहन स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है | इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय राशि या स्थान पर ग्रह के स्थित हो जाने पर उसे बल मिलता है | इस प्रकार के बल को स्थान बल कहते हैं |

{२}दिग बल – दिशा में स्थित होने वाले प्राप्त बल को दिग बल कहते हैं | जन्म कुंडली में लग्न पूर्व को , दशम दक्षिण को , सप्तम पश्चिम को, तथा चुर्थ भाव उत्तर को सूचित करता है | इसी प्रकार बुध गुरु पूर्व में , सूर्य,मंगल दक्षिण में , शनि पश्चिम में , चन्द्रमा शुक्र उत्तर में बली होते हैं | लग्न में बुध गुरु , दशम में सूर्य मंगल, सप्तम में शनि , तथा चतुर्थ में चन्द्रमा एवं शुक्र दिगबल के कारण बलवान कहलाते हैं |

{३}काल बल – समयानुसार प्राप्त होने वाला बल काल बल कहलाता है | जैसे – चन्द्रमा , मंगल, शनि, रात्रि में बली कहलाते हैं सूर्य,गुरु,शुक्र दिन में , तथा बुध दिन रात दोनों में बली होता है | सभी ग्रह अपने –अपने काल, होरा में अपने वर्ष में { जिसमें वर्षेश हो }, अपने मास में तथा अपने दिन में बली होते हैं | इसके इतर शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में तथा पाप ग्रह कृष्ण पक्ष में बली होते हैं |

{४} चेष्टा बल– सूर्य,चन्द्र उत्तरायण में {मकर से मिथुन तक छ: राशियों } में बलवान होते हैं | मंगल, बुध,गुरु,शुक्र,शनि- ये यदि ग्रह युद्ध में विजयी हो , वक्र गति हो या चन्द्रमा के स्थ हो तो चेष्टा बली कहलाते हैं |

{५} दृग्बल-दृष्टि के प्रभाव वश प्राप्त होने वाले बल को दृग्बल कहते हीं | जिन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो वे दृग्बल कहलाते हीं | और जिन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो वे निर्बल कहलते हैं |

{ ६} नैसर्गिक बल - ग्रहों के स्वाभाविक बल को नैसर्गिक बल कहते हैं | इस दृष्टि में सूर्य सर्वाधिक बली होता है | शनि से मंगल , मंगल से बुध , बुध से गुरु, गुरु से शुक्र , शुक्र से चन्द्रमा और चन्द्र से सूर्य निसर्गत: बली होता है |

ग्रहों का शुभाशुभत्व–सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं -१- शुभ, तथा २-पाप | जो ग्रह मनोनुकूल फल देते हैं , वे शुभ तथा जो मन के प्रति कूल फल देते हैं वे पाप ग्रह कहलाते हैं |

शुभ ग्रह-गुरु एवं शुक्र – ये दोनों पूर्ण शुभ ग्रह हैं \ पूर्ण चन्द्रमा तथा शुभ ग्रह से युक्त बुध भी शुभ माना जाता है | इस प्रकार अधिकतम ४ ग्रह शुभ माने गये हैं -१-गुरु,२-शुक्र,३- पूर्ण चन्द्रमा एवं ४- शुभ ग्रह युक्त बुध |

चन्द्रमा का शुभा - शुभत्व –शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है | इस पूर्ण चन्द्र को शुभ ग्रह माना जाता है , तथा कृष्ण पक्ष की एकादशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण माना जाता है | क्षीण चन्द्र को पाप ग्रह माना जाता है | शेष दिनों में चन्द्र मध्यम होता है , यह मध्यम चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों फल देता है |

पाप ग्रह –सूर्य, मंगल, शनि,राहू,एवं केतू – ये पाँच ग्रह पाप ग्रह कहलाते हैं | इसके अलावा क्षीण चन्द्र तथा पाप ग्रहों से युत बुध भी पाप ग्रह कहलाता है | पाप ग्रहों की संख्या सात हो जाती है – सूर्य , मंगल, शनि, राहू , केतू क्षीण चन्द्र, पाप युक्त बुध | इन पाप ग्रहों में से सूर्य और मंगल को क्रूर ग्रह भी कहते हैं |

ग्रहों की अवस्था – महर्षि पाराशर ने ग्रहों की फल देने की क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए उनकी अवस्थायें मानी हैं- १- बाल्यावस्था ,२- कुमार अवस्था ,३- युवा अवस्था , ४- वृद्धा अवस्था ,५- मृता अवस्था | विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रहों की वाल्या अवस्था होती है , ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह कुमार अवस्था , १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था ,ण १९ से २४ अंश तक स्थित वृद्धा अवस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की मृतावस्था होती है | सम राशियाँ में इसके विपरीत १-६ अंश तक मृतावस्था ,७-१२ अंश तक वृद्धावस्था , १३-१८ अंश युवावस्था , १९-२४ अंश तक कुमारावस्था , २५-३० बाल्यावस्था होती हि |{वृहत् पराशर होरा शास्त्र ग्रह अवस्थाध्याय }

बाल्यावस्था का ग्रह कुछ फल देता है | कुमारावस्था का ग्रह आधा फल तथा युवावस्था का ग्रह पूर्ण फल देता है | वृद्धावस्था का ग्रह दुष्ट फल एवं मृतावस्था का अनिष्ट कारक माना गया है –

फलं तु किन्चिद्वितनोति बालास्चार्द्ध कुमारो यतते च पुंसाम् |

युवा समग्रं खचारोऽथ वृद्ध: फलं च दुष्टं मरणम् मृताख्य:|| वृ. पा. हो.शा. }

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाल, कुमा, युवा, अवस्थावों में ग्रह के मौलिक प्रभाव {फल} में उतरोत्तर वृद्धि होती है | वृद्धावस्था में उसका प्रभाव घटता है और मृतावस्था में वह प्रभाव हीन हो जाता है |

6.7अभ्यास प्रश्न

1. रोग परिज्ञान के कितने उपकरण हैं
2. भाव कितने होते हैं
3. राशियाँ कितनी होती है

4.गोचर कितने प्रकार का होता है

6.8सारांश–

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि कोन -कोन से रोग ज्ञान के ज्योतिषीय उपकरण हैं साथ ही ये भी जाना कि ; ग्रह कब रोग कारक होता है | तथा साथ ही ग्रहों के बलाऽबल के सम्बन्ध में भी जाना कि ग्रह किन-किन स्थितियों में बलवान और निर्बल होंगे ,और बलवान ग्रह कैसा फल देगा,निर्बल ग्रह कैसे फल देगा | आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप रोग-परिज्ञान के सिद्धांतोंको भलीभांति समझकर रोगों का निर्णय व परिज्ञान कर पायेंगे |

6.8.1अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.3

2.12

3.12

4.2

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

6. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
7. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
8. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
9. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
10. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी

5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

6.मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

7 .चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता

8. प्रश्नमार्ग / माधव निदान

9.गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

10.ज्योतिष तत्व /

11.भारतीय ज्योतिष { नेमि चन्द्र शास्त्री }

12.मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

13. ज्योतिष एवं रोग {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

14..रोगों का सम्भावित काल {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रोग ज्ञान की प्राविधि क्या है सविस्तार पूर्वक वर्णन करें |

2- हरों का बलाबल क्या है |

3- ग्रहों की अवस्था कितनी होती है उनका फल सहित उल्लेख कीजिए|

4-योग क्या है व कितने प्रकार का होता है |

खण्ड -02

रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त

इकाई- 1 रोग परिचय

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 विषय परिचय

1.4 रोगों के कारण व भेद

1.5 रोगों का वर्गीकरण

1.5.1 सहज रोग

1.5.2 जन्मान्ध और ग्रह योग

1.5.3. जन्मजात बधिरता

1.5.4 जड़ता {मानसिक पिछडापन }

1.6 दृष्टि निमित्यजन्य रोग

1.6.1 महामारी

1.6.2 अदृष्ट निमितत्यजन्य रोग –

1.6.3 अभ्यास प्रश्न

1.7 सारांश

1.8 पारिभाषिक शब्दाबली

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.11 सहायक पाठ्यसामग्री

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना:-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त नामक द्वितीय खण्ड की प्रथम इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"रोग परिचय "**है इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने ग्रह के रोगकारक व रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव -जगत परकैसे पड़ता है, आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना | अब इसी क्रम में हम येजानेंगे, कि रोग क्या है | और शास्त्र में किस प्रकार से इसके विषय में बताया गया है, इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे | साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे |

1.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |

ज्योतिष में रोग के मुख्य आयामों से परिचित होंगे |

साथ ही शास्त्र में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।

ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग क्या है , कैसे उत्पन्न होते हैं |

साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे |

1.2 विषय परिचय –

मानव के शरीर व मन में होने वाले विकार जिनसे दुःख मिलता है, उसे रोग कहते हैं,इसको अनेकों नामों से जानाजाता है , जैसे – रोग:, रुजा ,बीमारी , मनोव्यथा व्याधि ,आधि{एवं रूग –रुज –चोपतापरोगव्याधिगदामया: | अमर कोष २/६/११} व्याधि शव्द वस्तुत: रोग का ही पर्याय है | आचार्य अमरसिंह ने अमरकोश में आधि – व्याधि दोनों शव्दों को अलग – अलग रूप से परिभाषित किया है , वही बात चरक संहिता में

भी आचार्य चरक कहते हैं कि आधि – मानसी व्यथा है, आमय, गद् आतंक , यक्ष्मा ज्वर , ताप , विकार , ये सब रोग के पर्याय शव्द हैं –अतव्याधिरामयोरगद आतंको यक्ष्मा ज्वरो विकारों रोग:| {च.सं.निदान.१/५ } सामान्य रूप से यदि कहें तो – जिससे विविध दु:ख मिलते हो उसे व्याधि कहते हैं | {सु.सं.१/२३ }अंग्रेजी भाषा में व्याधि को Disease {डिसीज} के रूप में परिभाषित है | यहाँ Disease शव्द में Dis शब्द का अर्थ व्यवधान , भंग से है ,तथा Ease शब्द का प्राकृतिक कर्म से तात्पर्य है ,आर्थात प्राकृतिक कर्म में व्यवधान ही व्याधि है , प्राकृतिक कर्म से तात्पर्य है कि यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति अस्वस्थ होता है, या स्वस्थता में कोई व्यवधान होता है तो वह , व्यवधान ही व्याधि है | अब बात करें की पूर्व में आधि शब्द आया उसका तात्पर्य है –मानसिक तनाव , मानसिक अस्वस्थता , मन की पीड़ा,प्रत्याशा , बन्धन, भय इत्यादि |इसी क्रम में आमय शव्द है –इसका तात्पर्य भी मनोव्यथा ,बीमारी है | हमारे संस्कृत वांग्मय साहित्य में भी कुछ इस प्रकार की चर्चा आती है -रघुवंश महा काव्य{१९/४८} में प्रसंग आता है – **"आमयस्तु रतिरागसम्भव:"**| इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम नाटक{३/११ } में भी **"मनोगतामाधिहेतुम"** कहा गया है | अब प्रश्न आता है किस को रोग हो सकते हैं तो नीती शतक{३/३५} में आचार्य भर्तृहरि कहतें हैं **- "भोगे रोग भयम्"** आर्थात अति भोग से भी रोग उत्पन्न होते हैं , इसलिए; कहते हैं कि अति सर्वत्र वर्जयेत |

1.3 रोगों के कारण व भेद –

असात्मइन्द्रिय संयोग , प्रज्ञापराध , परिपाक ये तीन प्रमुख रोगों के कारण आचार्य चरक ने माने हैं | प्रत्येक इन्द्रिय का अपने विषयों के साथ ,हीन , अधिक, एवं मिथ्या संयोग असात्मइन्द्रियार्थ संयोग कहा जाता है | जैसे – आँखों से बिलकुल न देखना 'हीनयोग" अधिक देखते रहना ,"योग" एवं सूर्यको अधिक प्रकाश में देखना तथा अल्प प्रकाश में पढ़ना मिथ्या योग है | इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय का जानना चाहिए | प्रज्ञापराध कहते हैं ,धी.धृति ,स्मृति, का सम्यक कार्य न करना | परिपाक का अर्थ है , पूर्वजन्म में जो हमने असत {अशुभ} कार्य किये हैं उनके अशुभ परिणामों {फलों} को भोगने हेतु वर्तमान जन्म में रोगों से युक्त होना | चरक ने शारीरिक, मानसिक एवं आगुन्तक रोग भूत {ग्रह} विष , दूषितवायु , अभिघातज , शस्त्र प्रहार आदि से उत्पन्न होते हैं |{ च.सू.११ } इसी क्रम में कायचिकित्सा ,स्त्री रोग, बाल रोग ,शल्य चिकित्सा एवं

वाजीकरण {संतानप्राप्ति } ये आठ अंग चरक ने चिकित्सा के लिए माने हैं |च.सू.३०/२८} मानव के जीवन में घटित होने वाली घटनाओं सुख-दुःख ,उन्नति - अवनति ,लाभ-हानि, रोग – शोक आदि में पूर्वजन्म –जन्म जन्मान्तरों के कर्मों का अवश्यमेव प्रभाव पड़ता है ,क्यूंकि –**"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"**| ज्योतिष शास्त्र शुभाशुभ कर्मों के परिपाक का अध्ययन कर मनुष्य को सचेत करता है | जैसे कि आचार्य वाराहमिहिर ने कहा है – **"यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभं तस्य कर्मण: पंक्तिम्"** | **व्यन्जयति शास्त्रमेतत त्तमसि द्रव्याणि दीप इव** || {लघु जातक १/२ } मानव के अशुभ कर्मों के आधार पर होने वाले आकस्मिक दुर्घटनाओं ,शारीरिक ,दुर्बलता एवं रोगों का विश्लेषण ज्योतिष शास्त्र करता है | क्यूंकि – **जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण बाधते** | केवल आहार-विहार की अनियमितता ही रोगोत्पत्ति का कारण नहीं अपितु पूर्वार्जित कर्म भी साध्यासाध्यता रोगों की उत्पत्ति के कारण है – **"कर्मप्रकारेण कदाचिदेके दोषप्रकोपेण भवन्ति चान्ये | तथापरे प्राणीषू कर्मदोषप्रकोपजा: कायमनोविकारा:"** || इस प्रकार कर्म सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए जन्मकुंडली के आधार पर रोगोत्पति के कारण ,लक्षण व निवारण का विश्लेषण करके मानव के दुःखविघातक व पुरुषार्थ साधक बनने में ज्योतिषशास्त्र महत्वपूर्ण भोमिका निभाता है |

1.4 रोगों का वर्गीकरण –

रोगों की भली-भान्ति विचार करने से पूर्व उनके भेद-उपभेदों को जानने के लिए उनका वर्गीकरण करना आवश्यक है | फलित शास्त्र के आचार्यों ने रोगों को दो प्रकार का माना है |

1.सहज 2. आगुन्तक |

सहज का अर्थ है –जन्म के साथ | अर्थात जन्मजात रोगों को सहज –रोग कहते हैं | और जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले रोग आगुन्तक रोग कहलाते हैं | सहज – रोगों के दो भेद होते हैं -१.शारीरिक तथा २.मानसिक | जन्म से ही लूलापन , लंगड़ापन,कुबडापन ,अंधत्व,काणत्व ,मूकता ,बधिरता ,नपुंसकत्व , हीनांग ,अधिकांग एवं विकलांग आदि को सहज {जन्मजात } शारीरिक – रोग कहते हैं | और जन्म से

ही जड़ता ,सनक ,पागलपन एवं मानसिकता – पिछड़ापन आदि सहज –मानसिक रोग कहलाते हैं |

जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले आगुन्तक – रोग भी दो प्रकार के होते हैं -1.दृष्टि निमितिजन्य एवं , 2. अदृष्टनिमितजन्य | जिन रोगों का निमित {कारण} साफ-साफ दिखाई देता है ,उन रोगों को दृष्टि निमितजन्य कहते हैं | उदाहरणार्थ – शाप ,अभिचार ,घात,संसर्ग,महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष कारणों से उत्पन्न रोगों को दृष्टिनिमितजन्य रोग कहा जता है |और जिन रोगों का कारण प्रत्यक्ष –घटना न होकर बाधक ग्रह हो ,उन रोगों को अदृष्ट – निमितजन्य रोग कहते हैं | अदृष्ट का अर्थ देव है , जो पूर्वार्जित कर्मों का परिणाम होता है | इसके फलस्वरूप उत्पन्न होने वाले रोगों को अदृष्टनिमितजन्य रोग भी शरीरिक एवं मानसिक भेदों से दो प्रकार के होते हैं |

रोग = {२ } आगन्तुक, सहज

सहज = शारीरिक , मानसिक

आगन्तुक = दृष्टि निमितिजन्य , अदृष्ट निमितजन्य

दृष्टि निमितिजन्य = शारीरिक , मानसिक

अदृष्टनिमितजन्य= शारीरिक , मानसिक

1.5.1 सहज रोग -

जन्म के साथ उत्पन्न होने वाले सहज रोगों का कारण जातक का पूर्वजन्म कर्म और उसके माता – पिता का अनुचित आचार होता है | अत: फलित शास्त्र में जन्म जात रोगों का विचार जन्म कुण्डली एवं गर्भाधान कुण्डली द्वारा किया जाता है |

होरा ग्रंथों में लूलापन ,लंग्डापन, कुबड़ापन , पंगुता , अंधापन , कनापन , मूकता , बधिरता , नपुंसकता , हीनांग, अधिकांग , एवं, जड़ता , आदि अनेक जन्मजात रोगों का ग्रह योगों के आधार पर विचार एवं विवेचन किया गया है | यहाँ इन जन्मजात रोगों का ग्रह योगों के आधार पर विचार एवं विवेचन किया गया है | यहाँ इन जन्मजात रोगों में से कुछ प्रमुख रोगों का विचार किया जा रहा है |

1.5.2 पंगुता {पोलियो }

प्राय: जिन बच्चों के एक या दोनों पैर जन्म से ही चले फिरने के लायक नहीं होते – ऐसे बचों को पंगु कहा जाता है | बहुधा इनके पैर टेड़े-मेडे होते हैं | उनकी बनावट में विकार उनके सही ढंग से विकास न होने के कारण होता है | पैर में विकलांगता के सूचक अनेक योग जातक ग्रंथों में समाहित है, उनमें से कुछ का विचार आधान कुण्डली से और कुछ का विचार जन्म कुण्डली से होता है | जैसे –

१.यदि गर्भाधान कुण्डली में –मीन लग्न हो और उस पर चन्द्रमा मंगल शनि की दृष्टि हो,तो गर्भस्थ शिशु के पैर में विकलता रहती {आती } है |

जन्म कुण्डली में में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक पंगु होता है|वृहज्जातक {४/१८}

मीन , वृश्चिक ,मेष, कर्क, या मकर राशि में पाप ग्रह के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो |
पंचम,एवं नवम स्थान में पाप ग्रहों के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो |
शनि एवं षष्ठेश – ये दोनों १२वें भाव में हो और इन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो |
षष्ठ स्थान में शनि – सूर्य एवं मंगल के साथ हो |

उपरोक्त ये योग विक्लांगता या पंगुता जातक में ला सकते हैं |

विशेष- मीन राशि एवं द्वादश{१२}वाँ भाव पैरों का प्रतिनिधत्व करता है | ग्रहों में चन्द्रमा बाल्यावस्था का तथा शनि पैरों का सूचक होता है | अत: मीन राशि तथा द्वादशभाव , शनि एवं चन्द्रमा का षष्ठ स्थान या पाप प्रभाव में होना पैरों में विकार की सूचना देता है | परिणामत: ऐसा जातक जन्म से चलने-फिरने के लायक नहीं होता |

1.5.2 जन्मान्ध और ग्रह योग –

जो व्यक्ति जन्म से अन्धा होता है , उसे जन्मान्ध कहते हैं | जातक ग्रंथों में जन्मान्ध के सूचक अनेक योग बताए गये हैं , उनमें से कुछ योग आधान कुण्डली और कुछ जन्मकुण्डली से होते हैं | आधान कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक जन्मान्ध होता है –

सिंह लग्न में सूर्य,एवं चन्द्रमा हो और उनमें एवं शनि की दृष्टि हो |
द्वादश स्थान में सूर्य एवं चन्द्रमा हो |

द्वितीयेश मंगल-सूर्य एवं चन्द्रमा से 8वें स्थान में हो और शनि छटवें या बारह वें स्थान में हो |

छटे एवं बाहरवें स्थान में पाप ग्रह हो |

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई योग हो तो जातक जन्मान्ध होता है –

सूर्य ,शुक्र एवं लग्नेश के साथ द्वितीयेश 6-8 या 12 वें भाव में हो |

लग्न में ग्रहण कालीन सूर्य हो त्रिकोण में शनि एवं मंगल हो |

सूर्य एवं शुक्र के साथ लग्नेश त्रिक में हो |

लग्न से दूसरे भाव में मंगल , छठे चन्द्रमा , आठवें सूर्य एवं बाहरवें भाव में शनि हो|

3.जन्मजात मूकता और उसके ग्रह योग –जन्म से गूंगेपन को जन्मजात मूकता कहते हैं | इसका भी विचार आधान एवं जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है | आधान कुण्डली में यह योग जन्मजात मूकता का सूचक है – वृष राशि में चन्द्रमा और सब पाप ग्रह भसन्धी में हो |

जन्म कुण्डली में निम्नलिखित योगों में से कोई एक योग हो तो, बालक जन्म से ही गूंगा होता है –

कर्क वृश्चिक या मीन में स्थित बुध को अमावस्या का चन्द्रमा देखता हो |

षष्ठेश एवं बुध –दोनों लग्न में हो |

षष्ठेश एवं गुरु- दोनों लग्न में हो |

धनेश एवं गुरु – दोनों त्रिक में हो |

फलित शास्त्र में वृष राशि एवं द्वितीय भाव वाणी का प्रतिनिधित्व करता है | चन्द्रमा बाल्यावस्था का, बुध वानी का और गुरु प्रतिपादन शक्ति का सूचक होता है | अत: इनका रोग भाव एवं रोगेश से सम्बन्ध तथा इस पर पाप प्रभाव वानी के विकार का सूचक होता है |

1.5.3. जन्मजात बधिरता –

कानों से सुनाई न पड़ने को बधिरता या बहिरापन कहते हैं | यह जन्मजात भी होती है और जन्म के बाद भी | जन्मजात बधिरता का विचार आधान एवं जन्मकुडली से होता

है | यदि आधान या जन्मकुंडली में निम्नलिखित योग होतो बालक जन्म से बहिरा होता है |

पाप ग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न, तृतीय या एकादश भाव में हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो |

पंचम एवं नवम भाव में स्थित पाप ग्रहों पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो |

शनि से चतुर्थ में बुध और षष्ठेश त्रिक स्थान में हो |

षष्ठेश एवं बुध पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो |

पूर्ण चन्द्र एवं शुक्र ये दोनों शत्रु ग्रहों के साथ हो |

रोगों में मूकता एवं बधिरता अन्योन्याश्रित होती है | जो बालक गूंगा होता है , वह बहिरा भी होता है | क्यूँकी बहिरापन के कारण सुनाई न पड़ने से वह बोलना सीख नहीं पाटा इसी समानता के कारण मूकता एवं बधिरता का कारक बुध को माना जाता है | प्रकारांत से शनि भी बधिरता को उत्पन्न करता है | कुण्डली में तृतीय एवं एकादश स्थान कानों का प्रतिनिधित्व करते हैं | अत: इन पर पाप प्रभाव और इनका रोग भाव या रोगेश से संपर्क बधिरता का उत्पादक माना जाता है |

1.5.4 जड़ता {मानसिक पिछडापन }

मानसिक रूप से पिछड़ेपन को जड़ता कहते हैं | इससे बालक का न केवल बौधिक विकास अवरुद्ध होता है , अपितु वह शारीरिक विकास में भी पिछड़ जाता है | ऐसे बालक का बौद्धिक अंक {आईक्यू}सामान्य से काफी नीचे होता है | और शारीरिक एवं मानसिक शक्ति कमजोर तथा बौद्धिक –शक्ति निम्न बिंदु पर स्थिर सी होती है | अन्य जन्मजात रोगों की भान्ति जड़ता का विचार भी आधान कुण्डली एवं जन्म कुण्डली दोनों से किया जाता है | जड़ता से सम्बंधित कुछ योग इस प्रकार है –

यदि आधान कुण्डली में चन्द्रमा पाप ग्रहों के साथ भसन्धी राशियों में हो और उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो |

जन्म कुण्डली में अगर निम्नलिखित योग हो तो, बालक जन्म से ही जड़ होता है , या मानिक रूप से जड़ होता है |

लग्न में सूर्य 12वें चन्द्रमा एवं त्रिकोण में मंगल हो |

लग्न में सूर्य ,त्रिकोण में चन्द्रमा और तीसरे स्थान में गुरु हो |

केन्द्र में चन्द्रमा एवं शनि हो और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो |

केन्द्र में चन्द्रमा एवं शनि हो और इन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो |

द्वितीय स्थान में सूर्य एवं गुलिक हों – इनको पाप ग्रह देखते हो या तृतीयेश शनि के साथ हो |

पंचम में शनि हो और लग्नेश पर शनि की दृष्टि हो या पंचमेष पाप ग्रहों के साथ हो |

विशेष- चन्द्रमा मन का , सूर्य विकास का तथा शनि मंदता /जड़ता का प्रतीक होता है | कुण्डली में चतुर्थ भाव मन का , पंचम बुद्धि का एवं नवम विकास का प्रतिनिधितत्व करता है | अत: इन पर पाप प्रभाव होने से शारीरिक , मानसिक एवं बौद्धिक विकास में अवरोध पड़ने से मानसिक पिछडापन हो जाता है |

1.6 दृष्टि निमित्यजन्य रोग –

चोट , दुर्घटना ,संसर्ग ,महामारी ,भय ,शाप एवं अभिचार जैसे प्रत्यक्ष कारणों से पैदा होने वाले रोग दृष्टिनिमित्यजन्य कहलाते हैं | दृष्टि जन्य का मतलब होता है – जो दिखाई पड़ने वाले कारणों से प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं , उन रोगों को दृष्टि निमितजन्य रोग कहते हैं | इन रोगों की सबसे बड़ी विशेषता यह है, कि ये अकस्मात पैदा होते हैं | इसलिए इन्हें आकस्मिक रोग कहा जाता है | आकस्मिक व्याधियों का प्रमुख प्रतिनिधि ग्रह मंगल माना जाता है |

और राहू,केतू तथा अन्य पाप ग्रह उसके सहयोगी माने गए हैं | इस शास्त्र के आचार्यों का स्पष्ट कथन है – " कि अग्नि , विष एवं शास्त्र से पीड़ा ,दुर्घटना , विस्फोट ,युद्ध ,महामारी ,राक्षस एवं घोर ग्रहों से भय , शत्रुता विनाशकारी इच्छा और मरण आदि अभिचारों का प्रतिनिधित्व मंगल करता है | { फलदीपिका १३/०४ }

चोट , दुर्घटना , महामारी ,विस्फोट ,भय , शाप एवं अभिचार की प्रवृत्ति में व्यक्ति या प्रकृति का उग्रतम् ,विरोध हो जाता है और वह उग्र रूप धारण कर लेता है , तभी शाप घात, या अभ्इचार का आश्रय लिया जाता है | इसी प्रकार जब प्रक्रिति उग्ररूप धारण कर लेती है , तब महामारी दुर्घटना एवं उत्पात होते हैं | कुण्डली में इस्विरोध और विरोधी का प्रतिनिधि भाव षष्ठ भाव है | ;इसलिए दृष्टि निमितिजन्य या आकस्मिक रोगों

का विचार – शाश्थभाव , षष्ठेश , षष्ठ स्थान में स्थित या , षष्ठ स्थान को देखने वाले ग्रह से किया जाता है | **"शापाभिचारघातादिजाता: दृष्टिनिमितिजा: |ज्ञेया: षष्ठतदीशाभ्यां तद्दृष्टा: तद गतेन वा ||**

1.6.1 महामारी –

प्राकृतिक प्रकोप से फैलने वाली बीमारीयों को महामारी कहते हैं | ये विमारियां एक साथ एक क्षेत्र में फैलती है और अचानक वहाँ के निवासियों में फ़ैल जाती है | ऐसी विमारियों में चेचक एवं हैजा प्रमुख है | आजकल जैसे कोरोना वाईरस भी एक भयावह माहामारी है |

1.6.2 अदृष्ट निमितत्यजन्य रोग –

गों के परिचय के संदर्भ में आयुर्वेद एवं ज्योतिष के शास्त्रीय ग्रंथों में , रोगों के दो प्रकार बताये गये हैं – १. जन्म जात २. एवं आगन्तुक { जन्म के बाद होने वाले }| आगन्तुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं – दृष्टिनिमत्यजन्य{आकस्मिक } एवं अदृष्ट निमित्यजन्य {कर्म जन्य } दृष्ट निमित्यजन्य रोग के बार में पूर्व में चर्चा हो ही गई है | अत: अब हम अदृष्ट निमित्यजन्य रोगों के विषय में जानते हैं |

"अदृष्ट" शब्द जन्मान्तरों में किये गये कर्मों या दैव का पर्यायवाची है| क्यूँकि जन्मान्तरों में किये गये कर्मों का फल को भाग्य , दैव या अदृष्ट कहा जाता है | **"भाग्यमदृष्टं दैवन्ज्य पूर्वकर्मफलं स्मृतम्"** || अत: अदृष्ट निमितजन्य रोगों से तात्पर्य उन रोगों से है , जो जन्मान्तरों में किये गये कर्मों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं और जिन्हें आयुर्वेद में कर्मजन्य रोग माना जाता है | ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों के अनुसार इन अदृष्ट निमित्य जन्य या कर्मजन्य रोगों की जानकारी बाधक ग्रहों के द्वारा होती है | यह बाधक ग्रह वा रोग कारक ग्रह मनुष्य के जिस अंग , धातु एवं दोष का प्रतिनिधित्व करता है , उससे विकार के माध्यम से शरीर में पैदा होने वाले रोगों की सूचना देते हैं | अदृष्टजन्य रोग दो प्रकार के होते हैं -१. शारीरिक एवं २. मानसिक | अदृष्ट निमित शारीरिक रोगों को ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने दो वर्गों में वर्गीकृत किया है |

अंगों के रोग तथा २. दोषजन्य रोग | अंगों में पैदा होओने वाले रोगों और धातु या दोष में विकार के कारण पैदा होने वाले रोगों को दोष जन्य रोग कहते हैं |

शारीरिक रोगों को उक्त दो वर्गों में वर्गीकृत करने का कारण यह है कि कुण्डली में लग्न आदि द्वादश भाव और मेषादि द्वादश {१२}राशियाँ मनुष्य के सर से लेकर पैर तक विविध अंगों का प्रतिनिधित्व करती है | इनमें से भाव राशि की धातु या दोष का प्रतिनिधित्व नहीं करते , जबकि सूर्य आदि ग्रह एवं मेषादि राशियां शरीर के अंग , धातु एवं दोष –तीनों का प्रतिनिधित्व करते हैं , इसलिए अंगों में उत्पन्न होने वाले रोगों में भावों एवं राशियों की तथा अन्य रोगों में ग्रहों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है |

यद्यपि "योग" – राशि भाव एवं ग्रह इन तीनों उपकरणों से बनते हैं | अत: अन्धापन एवं गूंगापन जैसे अंग विकारों के योगों में राशि एवं भावों के साथ –साथ ग्रहों का उल्लेख अवश्य होता है | तथापि अंग विकार के योगों में ग्रहों की तुलना में राशि एवं भाव की प्रधानता होती है , किन्तु राशि या भाव का शुभाशुभता ग्रहों के शुभ व अशुभ प्रभाव से ही प्रभावित होता है | अत: ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों का मत है कि- जिस भाव या राशि पर पाप ग्रह का प्रभाव दृष्टी,युति हो वह भाव या राशि शरीर के जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है उस अंग में रोग पैदा होगा | और कुण्डली में जो भाव या राशि शुभ ग्रहों से युत – दृष्ट होती है , वह जिस अंग का प्रतिनिधित्व करती है , शरीर का वह अंग स्वस्थ एवं पुष्ट होता है |

1.6.3 अभ्यास प्रश्न

१. मुख्यत: रोग कितने प्रकार के होते हैं ?

२. जन्म के बाद जीवन में पैदा होने वाले आगुन्तक रोग कितने प्रकार के होते हैं ?

३. मीन , वृश्चिक ,मेष, कर्क, या मकर राशि में पाप ग्रह के साथ शनि एवं चन्द्रमा हो,तो कोन सा रोग होता है ?

४. यह कोन सा व्याधि योग है - लग्न में सूर्य 12वें चन्द्रमा एवं त्रिकोण में मंगल हो |

1.7 सारांश –

इस इकाई के अन्तर्गत आप ने अध्ययन किया कि – रोग क्या हैं , कैसे उत्पन्न होते हैं रोगों के कितने प्रकार होते हैं , साथ ही ज्योतिष में रोगों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है | कोन से ग्रह कब व किस स्थिति में रोग कारक होते हैं ,रोग परिचय में राशियों की भी उतनी ही भूमिका होती है जितनी कि ग्रहों की| साथ ही जन्मजात रोग और आगन्तुक

रोगों के बारे में जाना ,इसी क्रम में दृष्टि निमतजन्य एवं अदृष्ट निमित जन्य सभी बिषयों का विस्तार पूर्वक अध्ययन किया | आशा है कि -इस इकाई के अध्ययन से आप रोगों के परिचय का बोध कर सकेंगे तथा आगे की इकाईयों के अध्ययन में सहायता मिल सकेगी|

1.8 पारिभाषिक शब्दावली

पक्षाघात–स्नायुविकार के कारण उत्पन्न होने वाला रोग, जिसमें शरीर का अंगविशेष निष्क्रिय हो जाता है।

योग - ज्योतिषीय ग्रहस्थिति, ग्रहों के स्थान दृष्टि -युति सम्बन्ध के कारण बनने वाला योगविशेष।

अस्तंगत– सूर्य के साथ ग्रह के स्थित होने पर उसमें बलहीनता का आना।

रोगेश- षष्ठ भाव का स्वामी।

ग्रहयुति-दो या तीन ग्रहों का एक ही भाव में होना।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. दो

२.दो

३.पंगुता

४.मानसिक

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली

6. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.11 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार, डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

१.रोग से क्या तात्पर्य है ? विस्तृत रूप से विवेचन कीजिये |

२. सहज और आगन्तुक रोग कोन – कोन से होते हैं |

३. जन्मजात रोगों के भेदों को सविस्तार पूर्वक लिखिए

४. "पूर्वजन्म कृतं पापं व्याधिरूपेण जायते" इस सूक्ति की व्याख्या कीजिये |

इकाई- 2 पुनर्जन्म परम्परा

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 विषय परिचय

2.4 भौतिक शरीर और आत्मा

2.4.1 कर्त्ता कोन

2.5 पुनर्जन्म

2.5.1 जीव को मनुष्य योनि की प्राप्ति

2.6 जन्मों की पुनरावृति

2.6.1 श्रीमद् भागवतमहापुराण के अनुसार पुनरावृत्ति और उर्ध्वागति -

2.6.2 पुनर्जन्म की मान्यता

2.7 बोधात्मक प्रश्न

2.8 सारांश

2.9 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

2.11 सहायक पाठ्यसामग्री

2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त नामक द्वितीय खण्ड की द्वितीय इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"पुनर्जन्म परम्परा"**है इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने रोगपरिचय के विषय में जाना, कि रोगकारक ग्रह कैसे रोग उत्पन्न करते हैं | साथ ही रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव -जगत पर कैसे पड़ता है, आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना | अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे, कि पुनर्जन्म परम्परा क्या है | और शास्त्र में किस प्रकार से जन्म-मृत्यु का चक्र चलता है, तथा अनेक योनियों में जन्मों का चक्र चलता है, इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे |

2.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |

पुनर्जन्म परम्परा क्या है व पुनर्जन्म में कर्मों का क्या स्थान है | ,

जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है |

रोगों की सम्भावना व जीवन में समस्त शुभाशुभ घटनाओं में -

पुनर्जन्म के कृत्यों का महत्व से भी परिचित हो पाएंगे |

2.3 विषय परिचय –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च | तस्मादपरिhaayr हमारी शास्त्रीय मान्यता के अनुसार पुनर्जन्म का अभिप्राय आत्मा का एक शरीर से दुसरे शरीर में प्रवेश करने से है, इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे पुराणों में इसके उदाहरण भगवत अवतारों के रूप में देखने को मिलता है | चिन्तानानुसार {दर्शनशास्त्रों के अनुसार } प्राचीन काल में ऋषियों ने स्वयम की खोज की और पाया कि , स्वयम शरीर नहीं है ,अपितु शरीर को धारण किये हुए आत्मा है जो कि निराकार है – उनका मूल स्वरूप है | प्राय: आपने आत्मसाक्षातकार सूना होगा यही आत्मा को जानने का आर्थात स्वयम को जानने की प्राविधि ही आत्म साक्षात्कार है | अब प्रश्न होता है कि आत्मा को कैसे जाना जाय ? तो इसके लिए – योग ज्ञान ,भक्ति आदि पद्धतियाँ प्रचलित हैं जिसका आविर्भाव प्राचीन काल में ही हमारे पूर्वज ऋषियों ने आध्यात्म विद्या , योग विद्या में दिया है | ऋषियों ने

स्वयम को जानकर अपने जन्मान्तरों के ज्ञान की भी प्राप्ति की और ये भी जाना की जीवात्मा आनादि काल से अपने कर्मानुबंधं के कारण जन्म-मृत्यु के चक्कर लगा रहा है |

वैदिक साहित्य दर्शन - शास्त्रों में आत्मा को अजर और अमर माना गया है | और इसका कभी नाश नहीं होता है | केवल यह शुभाशुभ कर्मों के कारण अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है |प्राणीमात्र के शरीर में स्थित यह तत्व नित्य , निष्क्रिय ,स्वतंत्र , वशी विभू एवं निर्विकार होते हुए भी कर्मानुबंध के प्रभाव के कारण विनाशशील , परतंत्र , दुःख ,जन्म-मृत्यु , ज़रा एवं व्याधियों से युक्त प्रतीत होता है |

आत्मा का अनादिकालीन कर्म-प्रवाह के कारण लिंग-शरीर , कार्मनण शरीर एवं भौतिक स्थूल शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है | जब एक समय में आत्मा भौतिक शरीर का त्याग करता है तो वह लिंग शरीर में रहता है, तथा कर्मण शरीर की सहयता से कर्मानुबंध के अनुसार भौतिक शरीर प्राप्त कर लेता है | जन्म -मृत्यु , का यह अनवरत चक्र तब तक चलता रहता है, जब तक कर्म प्रवाह रूकता नहीं | और जब चित्तवृतियों का निरोध कर समाधिस्थ हो जाने से कर्म प्रवाह रूक जाता है , तो प्रारब्ध कर्मों का फल भोगकर आत्मा जन्म - मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता हैं | इसी को मोक्ष कहते हैं |

2.4 भौतिक शरीर और आत्मा –

यह भौतिक शरीर की यह विशेषता है कि , इसमें प्रवेश करते ही आत्मा जन्म - जन्मान्तरों के संचित संस्कारों की निश्चित - स्मृति को खो देती है | इतना ही नहीं इस शरीर में आते ही यह निष्क्रिय होते हुए भी सक्रिय ,स्वतंत्र होते हुए भी परतंत्र , वशी होते हुए भी दुखदायक भावों से आक्रान्त , विभू एवं सर्वगत होते हुए भी सीमित तथा निर्विकार होते हुए भी सुख-दुःख आदि भावों का अनुभव करने लगती है | नित्य , शुद्ध एवं बुद्ध आत्मा को इस स्थिति में लाकर खडा कर देने वाला, या यूँ कहें कि पुनर्जन्म के बंधन परम्परा का एक मात्र कारण , कर्मों का ही बन्ध है |

2.4.1 कर्त्ता कोन –

कार्य करने के बाद कर्त्ता को अनिवार्य रूप से प्राप्त होने वाला परिणाम कर्मानुबन्ध कहलाता है | और यही कर्मों का बंधन किये गये कर्मों शुभाशुभत्व के अनुसार उसे इष्टानिष्ट योनियों में ले जाता है | वस्तुत: आत्मा की स्वतन्त्र केवल कार्य करने में है - वह चाहे तो अच्छा या बुरा कार्य करे | परन्तु कार्य करने पर वह - उसके अपरिहार्य - फल से अनुबंधित हो जाता है |

यद्दपि आत्मा निष्क्रिय है | तथापि यह मन एवं इन्द्रियों को चेतनता प्रदान करने के कारण कर्त्ता कही जाती है | वास्तव में मन अचेतन एवं क्रियाशील है | तथा आत्मा क्रियाशून्य चेतनता प्रदान

करती है | अभिप्राय यही है कि आत्मा के सम्पर्क मात्र से चेतनता प्राप्त क्र मन समस्त क्रिया कलापों को करता है | किन्तु यदि आत्मा मन को चेतनता प्रदान न करे तो क्रियाशील मना भी निष्क्रिय हो जाता है | इसलिए मन की क्रियाशीलता में आत्मा का सम्पर्क हेतु है | परिणामत: मन से किया गया कर्म वही कर्त्ता तथा उपभोक्ता कहलाती है | अगर आत्मा को कर्त्ता न माना जाय तो सुख,दुःख ,गति, अगति, ज्ञान ,शास्त्र ,जन्म मृत्यु बंधन एवं मोक्ष आदि भी नहीं होगे ; इसलिए वैदिक दर्शन में आत्मा को कर्त्ता माना गया है |

यदि आत्मा को कर्त्ता न माना जाय तो सुख,दुःख ,गति,ज्ञान ,शास्त्र ,जन्म , मृत्यु बन्धन एवं मोक्ष आदि कुछ भी नहीं होगा , इसलिए वैदिक दर्शन में आत्मा को कर्त्ता माना गया है | जैसे कुम्हार के बिना मिट्टी , दण्ड ,एवं चक्र आदि के रहने पर भी घडा नहीं बनता , या मिस्त्री के बिना घर नहीं बन सकता टीक उसी प्रकार मन,बुद्धि, इन्द्रियों के समूह मात्र से शरीर नहीं बनता | वस्तुत: कर्त्ता के बिना कार्य की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती | अत: शरीर की उत्पत्ति में आत्मा कारण है तथा शरीर एवं मन द्वारा किये गये कार्यों का वह उपचार द्वारा कर्त्ता भी है |

आत्मा की एक विशेषता यह है कि वह वशी है | वशी का तात्पर्य यह है कि यह उत्तम फल भोगने की इच्छा ओने पर भी निकृष्ट कार्य करता है | जब उत्तम या उत्तम या निकृष्ट फल को भोगने की इच्छा नहीं होती तब आत्मा चंचल मन को समाधिस्थ कर लेता है , जिससे कर्म प्रवाह रूक जाता है| क्यूँ की इन्द्रियों के साथ मन का सम्पर्क होने से ही कर्म होते हैं | अत: मन समाधिस्थ होने पर कर्म नहीं होते |

इस स्थिति में मन राग या द्वेष से अथवा रजस एवं तमस से मुक्त हो जाता है और वह समस्त सांसरिक वस्तुओं एवं वृतियों को त्याग देता है |इस त्याग से मोक्ष प्राप्त होता है | और जन्म - मृत्यु पुनर्जन्म परम्परा से निवृति होती है |

2.5 पुनर्जन्म –

पुनर्जन्म भारतीय सिद्धांत है | इसके विषय में प्राय: सभी धर्मों के धर्म ग्रन्थों में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है| इस सिद्धांत के अनुसार जीवात्मा के जन्म और मृत्यु के बाद पुनर्जन्म की मान्यता को स्थापित किया गया है | विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद से लेकर वेद, पुराण , दर्शन शास्त्र , पुराण गीता , योगादि ग्रन्थों में पूर्वजन्म की मान्यता का प्रतिपादन किया गया है | इस सिद्धांत के अनुसार शरीर की मृत्यु ही जीवन का अन्त नहीं है , परन्तु जन्म जन्मान्तरों की एक लम्बी यात्रा है | जिसे ग्रन्थों में 84 लाख या प्रकार की योनियों में जीवात्मा जन्म लेता है और अपने कर्मों को भोगता है |आत्म ज्ञान होने के बाद जन्म की परम्परा रूकती है ; फिर भी आत्मा स्वयं के निर्णय , जीव जगत के कल्याण की भावना या मुक्त कराने की भावना से भी जन्म लेता है | जिसके प्रत्यक्ष

उदाहरण ईश्वरीय अवतारों का भी वर्णन है | पुराणों से लेकर अद्यावधि तक बहुत से उदाहरण पुनर्जन्म के प्रसंग में मिलते हैं |**{ENTERNETविकिपीडिया }**

2.5.1 जीव को मनुष्य योनि की प्राप्ति –

श्रीमद्भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध के तीसवें अध्याय में भगवान् कपिल अपनी माता देवहूति से सम्वाद करते हुए जन्म-जन्मान्तरों की परम्परा के विषय में कहते हैं कि- **"कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये | स्त्रिया:प्रविष्ट उदरं पुंसा अंत:कारणाश्रय:"** || कि कर्मों की गति के कारण यह जीव भगवान् की प्रेरणा से व कर्म के प्रभावानुसार शरीर प्राप्त करने के हेतु पुरुष के वीर्यकण के आश्रय से स्त्री उदार को प्राप्त होता है | एक रात वीर्य रज{रक्त} का मिश्रण होता है , पांच रात्रि में छोटा- सा बुलबुला हो जाता है, दस दिन में बेर के आकार का फिर पिंडाकार बन जाता है | एक मास में नख , रोम अस्थि चर्म और इन्द्रिय - छिद्र बन जाते हैं | चतुर्थ मास में सप्त धातुएँ , पञ्चम मास में छुधा - पिपासा { भूख-प्यास } और छठे मास में गर्भस्थ झिल्ली में लिपटा हुआ , दाँयी कुक्षी में घूमने लगता है | माता द्वारा खाया-पिया अन्न-जल गर्भ की नाडी में पहुँचता हुआ गर्भस्थ शिशु की धातुएँ बढाता है | वह जीव वहाँ मॉल-मूत्र के कुण्ड में पडा हुआ कष्ट भोगता है | वहाँ कृमि उसे काटते हैं , इससे व्याकुल होता हुआ मूर्छित तक हो जाता है | कटु , तीक्ष्ण , गरम , लवन युक्त, रुक्ष, या अम्ल आदि जो कुछ भी माता भोजन करती है , उससे गर्भस्थ जीव का अंग - अंग वेदना का अनुभव करता है | वह गर्भाशय की झिल्ली से लिपटा , आँतों में फंसा , रीढ़ और कंठ को टेढा किये हुए कुक्षी में सर दिए पडा रहता है | उस समय उसे जन्म- जन्मान्तरों के कर्म प्रभाव से स्मृति आती है, तब याद करके लम्बी स्वासें लेता है | सातवें मास में इसे बाधा होती है , यह कांपता हुआ घूमता है और व्याकुल चित्त से प्रभू - कृपा की अभिलाषा करते हुए सप्त धातुओं में बंधा जीव करबद्ध प्रार्थना करता है | - **"तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्तनानातानोर्भुवी चलच्चरणारविन्दम"** || अर्थात कहता है कि - मैं जगत की रक्षा के लिए स्वेक्षा से अनेक रूप धारी भगवान् के निर्भायकारी चरणारविदों की शरण में हूँ , जिन्होंने मुझ पापी को उचित दंड रूप से गर्भप्रवास प्रदान किया है |संसार के कर्म बन्धन में पड़े हुए भुतेंद्रिय और अंत: करण रूपी माया को प्राप्त होकर जो जीव इस दशा को पहुँचता है ,वही मैं अपने संतप्त हृदय से अखंड ज्ञानी परमेश्वर को नमस्कार करता हूँ | माता के शरीर में यह जीव मॉल-मूत्र युक्त कूप में पडा हुआ जठराग्नि के डाह से सन्तप्त हुआ यहाँ से बाहर निकलने के लिए अपने मासों को गिनता है | हे नाथ आपने स्वयं ही मुझे दस मास वाले पर अत्यन्त कृपा करके यह गति प्रदान की है | आप अपने किये हुए उपकार से स्वयं ही संतुष्ट हैं | हम आपके हाथ जोड़ने के अतिरिक्त और क्या कर सकते हैं ? हे प्रभो मैं अत्यंत दुखमय गृह में निवास कर रहा हूँ , फिर भी इस गर्भ रूपी अंधकूप से बहार निकलना नहीं चाहता क्यूंकि बहार निकलते ही माया घेर लेगी और विपरीत वुद्धि होने से भावचक्र मैं सदा पड़े रहना होगा अत: मैं इस दसा में आत्मा द्वारा आत्मा का उद्धार करूँगा , जिससे कि अनेक गर्भावासों

के महान दुखों को पुन: पुन: न भोगों | भगवान् के चरण कमलों की शरण लेने का यही तो फल है |

एवं क्रितमत्तिर्गर्भे दशमासस्य स्तुवन्न ऋषि: |

अर्थात - भगवान कपिल कहते हैं कि वैसी बुद्धि वाले उस जीव को दस मास पूर्ण होते - होते , बहार निकलने के लिए प्रसूतिका वायु उलटा धक्का देती है | उसके द्वारा धक्का खाया हुआ वह जीव सहसा नीचे की और सर किये घबराहट और कष्ट के कारण स्वांसावरोध होने के कारण बुद्धि हीन हुआ अत्यंत कष्ट से बहार निकलता है | तब पृथ्वी पर पडा हुआ रक्त - मूत्र से सना मॉल के कीट जैसी चेष्टा करता हुआ रोता है , मक्खियों को उड़ाने के लिए हाथ भी नहीं हिला सकता है | इस प्रकार शैशवावस्था को भोगता हुआ है | इस प्रकार शैशवावस्था को भोगता हुआ पौगंड अवस्था के कष्ट उठाता हुआ अज्ञान के कारण कुछ भी नहीं सीख पाता तब क्रोध से अपने आत्मा के विनाशार्थ कलह करने लगता है | उस समय उस अज्ञानी को अपने पंचभूतात्मक शरीर में अस्त कल्पना होने लगती है कि यह में हूँ , यह मेरा है और वहाँ कर्म करने में लगगया जिसमें फंस कर उसे संसार में पुनर्जन्म ग्रहण करना पडा है | विषय वासना और उदार पूर्ति के लिए कुमार्गों द्वारा धन संचय और विलासादि करता है | उसके सत्य , शौच, दया, मौनत्व , बुद्धि , श्री , लज्जा , यश, क्षमा, शम,दम, वैभव आदि गुणों का बुरी संगति के कारण नाश हो जाता है | **न तथास्य भवेंमोहो बन्धश्चान्यप्रसंगत:|**

2.6.1 जन्मों की पुनरावृति –

इस सन्दर्भ में भगवान् योगेश्वेर श्रीकृष्ण ने गीता में जो कुछ कहा है उसका कुछ अंश का आश्रय ले कर इसको समझने का प्रयत्न करते हैं - **"जन्म कर्म च में दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वत:| त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन"** ||{गीता अ.4 }श्लोक 09

अर्थात -इस श्लोक में भगवान् - अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं | ये निर्मल है | आलौकिक है | जो मनुष्य तत्व से मुझे जान लेता है , वह अपने नश्वर शरीर को त्यागने के बाद भी पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है | वो केवल मुझे प्राप्त होता है |

इसका भावार्थ यह है कि जो भगवान् को तत्व ज्ञान से जान लेता है , वह नश्वर देह का त्याग करने के बाद जन्म- मृत्यु के बन्धनों से मुक्त हो जता है और मुझको प्राप्त कर लेता है | पुनर्जन्म के पाश से निकलने के लिए भगवान् ने कितना आसान तरीका यहाँ पर बताया है | भगवान यहाँ स्वयं के बारे में भी बताते हैं कि मेरा जन्म - कर्म निर्मल है दिव्य है , इसमें भी दर्शन है , अर्थात चित्त की निर्मालता ही भगवान् को भाती है, इसलिए -चित्त की निर्मलता से ही परमात्मा के प्रति प्रेमोदय होता है | इसका तात्पर्य हम ये समझ सकते हैं की हमारे शुभाशुभ कर्म ही हमें पुनर्जन्म की परम्परा के द्योतक हैं | अब इसी कर्म में और समझने का प्रयाश करते हैं कि पुनर्जन्म किसका निश्चित है

और किसका नहीं , गीता में आठवें अध्याय के पन्द्रहवाँ श्लोक देखें - **"मामुपेत्य पुनर्जन्म दू:खालयम शाश्वतम् | नाप्नुवन्ति महात्मान: संसिद्धिं परमां गता:"**

अर्थात -आत्मानुभूति के द्वारा ज्ञानी पुरुष को प्राप्त लाभ का मूल्यांकन करते हुए यहाँ कहा गया है कि मुझे प्राप्त कर महात्मा जन पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते | तत्व चिन्तक दार्शनिकोण के अनुसार समस्त दु:खों का मूल है पुनर्जन्म | श्रीकृष्ण भी यहाँ पुनर्जन्म को दु:खालय और आशाश्वत कहते हैं | भारतीय दर्शन के इतिहास में एक बात ध्यान देने योग्य है कि प्रारम्भ में अमृतत्व को जीवन का लक्ष्य माना जाता ठा परन्तु बाद में पुनर्जन्म के अभाव को लक्ष्य स्वीकार किया गया | मनुष्य को सब अनुभवों में मृत्यु का अनुभव सर्वाधिक भयानक प्रतीत होता है | यही कारण है कि प्रारम्भ में साधक का समस्त प्रयत्न और व्याकुलता इस अपरिहार्य मृत्यु से मुक्ति पाने के लिए थी | जीवन की घटनाओं का सम्यक अवलोकन और मूल्यांकन करने पर जैसे-जैसे उसके ज्ञान में वृद्धि हुई और विचारों में परिपक्वता आयी तब शीघ्र ही आध्यात्म के विचारक ऋषियों ने यह पाया कि जो लोग यह समझ लेते हैं कि जीवन के अनुभवों में मृत्यु भी एक है तो उनके लिए मृत्यु की भयंकरता समाप्त हो जाती है | जीवन के अखण्ड अस्तित्व को मृत्यु काट नहीं सकती | सत्य के विषय में अत्यंत निष्पक्ष एवं निर्मम भाव से विचार करने वाले ऋषिगण तर्क एवं अनुभव के द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि समस्त दु:ख जन्म के साथ प्रारम्भ होते हैं | अत: जीवन का लक्ष्य पुनर्जन्म का अभाव या पुनर्जन्मों की परम्परा से मुक्ति होना चाहिए | पुनर्जन्म का स्वप्न उसके अपरिहार्य कष्ट मिथ्या अहंकार अथवा जीव को ही होते हैं | अजन्मा आत्मा ही जड़ उपाधियों में व्यक्त विद्युत् ही प्रकाश है , उस बल्ब के फूट जाने पर कार्यरूप प्रकाश अपने कारण रूप विद्युत् में लीं हो जाता है जबकि विद्युत् एक होकर सब में सामान रूप से प्रकाशमान है अर्थात सम्पूर्ण विश्व को प्रकाशित कर रहा है |

2.6.2 श्रीमद् भागवतमहापुराण के अनुसार पुनरावृत्ति और उर्ध्वागति -

भागवतपुराण के अन्तर्गत मोक्ष के विषय में व जन्म-मृत्यु के बन्धनों से कैसे मुक्ति मिले , इसके लिए पुरुषार्थ चतुष्टय के विषय में बहुत सारे कथा प्रसंगों में बताया गया है -तृतीय स्कंध में कहा गया है - **"अथ यो गृहमेधीयान धर्मानेवासन गृहे | काममर्थं च धर्मान स्वान दोग्धि भूय: पिपर्तितान"** ||

कोई गृहस्थ घर में वास करते हुए काम, अर्थ, और धर्मादि का अनुष्ठान करते हैं | कोई कामनाओं द्वारा मोह को प्राप्त होकर प्रभू की विमुखता वाले यज्ञों द्वारा देवता और पित्रों को पूजते हैं | तथा उनको प्रसन्न करके चन्द्रलोक में पहुच कर अमृत का पान करते हैं | काम और अर्थ के लिए अपने धर्म का पालन करने वाले धीर पुरुष सब आसक्तियों और कर्मों को छोड़कर निवृति धर्म में लगे पुरुष ईश्वर के लोक में पहुँचते हैं | ईश्वर भाव की आराधना करने वाले धीर पुरुष सब आसक्तियों और कर्मों को छोड़कर विष्णु लोक को प्राप्त होते हैं | ममता और अहंकार को छोड़कर निवृति धर्म में लगे पुरुष ईश्वर के लोक में पहुँचते हैं | तात्पर्य यही है कि कर्मों के प्रभाव से अर्थात सत कर्मों से प्राप्त पुण्य भोगवश जब क्षीण हो जाते हैं , तो जीव फिर इसी लोक में गिरा दिया जाता है , और जब फल की निवृति हो जाती है,चाहे पाप फल हो या पुण्य फल तो तब जीव जन्म- मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है , आत्मा परम लोक परमात्मा में ही समा जाती है |

2.6.3 पुनर्जन्म की मान्यता –

पौराणिक एवं एतिहासिक ग्रन्थों में पुनर्जन्मपरम्परा व उसकी मान्यता के अनेकों उदाहरण मिलते हैं , महाभारत में युद्ध के दौरान भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं - कि हे पार्थ तेरे और मेरे अनेक जन्म हो चुके हैं | फर्क ये है कि मुझे मेरे सारे जन्मों की याद है,लेकिन तुझे नहीं | याद होने के कारण तेरे लिए यह संसार नया और तू फिर से आसक्ति पाले बैठा है |

इसी सन्दर्भ में गीता में कहते हैं भगवान योगेश्वेर - वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानी गृह्णाति नरो पराणि | तथा शरीराणि विहाय जीर्णानि न्यन्यानि संयाति नवानि देही ||

अर्थात- जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों के जीर्ण-शीर्ण होने पर त्याग करके नये वस्त्र धारण करते हैं , ठीक उसी प्रकार आत्मा भी शरीर के जीर्ण- शीर्ण होने पर या नष्ट होने पर दूसरा शरीर धारण कर लेती है , तात्पर्य यही है कि - आत्मा अजर-अमर है |

वेदों में पुनर्जन्म को मान्यता है | उपनिषद में पुनर्जन्म की घटनाओं का व्यापक उल्लेख मिलता है |

योग दर्शन के अनुसार अविद्या आदि क्लेशों के जड़ होते हुए भी उनका परिणाम जन्म, जीवन और भोग होता है | सांख्य दर्शन के अनुसार त्रिविध दुखान्त्य निवृति खयन्त पुरुषार्थ: | पुनर्जन्म के कारण ही आत्मा के शरीर , इन्द्रियों तथा विषयों से सम्बन्ध जुड़े रहते हैं | न्याय दर्शन में कहा गया है कि जन्म, मरण जीवात्मा की अवस्थाएं है | पिछले कर्मों के अनुरूप वह उसे भोगती है तथा नवीन कर्म के परिणाम को भोगने के लिए वह फिर जन्म लेती है | ज्योतिष शास्त्र के जातक ग्रन्थों में प्राय: इस प्रकार के बहुत से योग देखने को मिलते हैं, मानव जीवन में घटित जो भी शुभाऽशुभ घटनाएँ घटती हैं उनके मूल में कहीं न कहीं हमारे कर्मों का उनके साथ कार्य - कारण सम्बन्ध होते हैं | क्यूंकि कर्मों के आधार पर ही फल कथन होता है , जैसे की पूर्व की इकाईयों में आपने जाना

कि कर्म तीन प्रकार के होते हैं संचित , प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों कर्मों को आधार मानकर उनके परिणाम स्वरुप का प्रतिफल ही मानव जीवन की समस्त शुभाशुभ घटनाएँ है |अत: संचित कर्म का विचार जन्म कुण्डली में विद्यमान ग्रह योगों से किया जाता है, तथा प्रारब्ध कर्म का विचार दशा के माध्यम से , इसी प्रकार क्रियमाण कर्म का विचार गोचर स्थिति वश किया हाता है, इस से यह स्पष्ट होता है कि पूर्वजन्म के कर्मों के आधार पर ही ग्रह स्थिति ही दैव बनकर जीव का जन्म होता है और उसका सुभाशुभ परिपाक भोगना पड़ता है |

2.8 बोधात्मक प्रश्न -

1.शास्त्रीय मान्यता के अनुसार पुनर्जन्म का अभिप्राय आत्मा का एक शरीर से दुसरे शरीर में प्रवेश करने से है |

क . सत्य ख . असत्य

2. वैदिक साहित्य दर्शन - शास्त्रों में आत्मा को अजर और अमर माना गया है |

क . सत्य ख . असत्य

3. मनुष्य को सब अनुभवों में मृत्यु का अनुभव सर्वाधिक भयानक प्रतीत होता है |

क . सत्य ख . असत्य

4. गीता में भगवान श्रीकृष्ण पुनर्जन्म को दु:खालय और आशाश्वत कहते हैं |

क . सत्य ख . असत्य

2.9 सारांश –

प्रस्तुत इकाई के अन्तर्गत आप ने जाना कि जीव की जन्म-जन्मों का चक्र कैसे चलता है ,साथ ही मोक्ष कैसे प्राप्त होता है , वस्तुत: शुभाशुभ कर्मों की जब निवृति होगी तो निश्चित ही उनके फलों की भी निवृति होगी , और जब कर्म एवं उनके फलों की निवृति पूर्ण रूप से हो जायेगी तो निश्चित ही आत्मा पुनर्जन्म परम्परा के चक्र से निवृत होकर उस परमपिता परमात्मा में लीन हो जायेगी अर्थात मोक्ष को प्राप्त करेगी | साथ ही हमारे इतिहास पुराणों व भगवतगीता आदि ग्रन्थों में जो पुनर्जन्म परम्परा का ज्ञान मिलता है , उसका भी सूक्ष्म रूप से अवलोकन किया |

2.10 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर -

1. क , 2. क, 3. क, 4. क

2.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

2.12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पुनर्जन्म क्या है परिचय दीजिये |

2. पुनर्जन्म के सिद्धांत के विषय में बतायें |

3. पुनर्जन्म के चक्र से कैसे निवृत्ति मिलती है |

4. मनुष्य जन्म के विषय में स्वात्म मंथन कर लिखिए |

इकाई- 3 कर्म फल भाग्यफल परिचय

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3 .2 उद्देश्य
3 .3 विषय परिचय
3.4 कर्मफल विचार
3.5 भाग्य फल विचार
3.6 बोधात्मक प्रश्न
3.7 सारांश
3.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भित ग्रन्थ / सहायक ग्रन्थ
3.10 सहायक पाठ्य सामग्री
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न
3.7 पारिभाषिक शब्दाबली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.9.1 सहायक पाठ्यसामग्री
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त नामक द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है | जिसका शीर्षक **"कर्म फल भाग्यफल परिचय"** है | ज्योतिष शास्त्र जनोपयोगी विद्या है | इसने व्यापक स्तर पर मानव समाज में जितनी पैठ बनाई है, संभवत: उतनी किसी और विद्या ने नहीं | इसलिए इसकी लोकप्रियता सर्वोपरि है | काल का आकलन तथा हमारे कर्मों का फल जो की हमारे जीवन में शुभाशुभ बनकर फल देता उसको जानने की जिज्ञासा की पूर्ति इसी ज्योतिष शास्त्र को पढ़ कर पूर्ण हो सकती है | इसलिए ज्योतिष को वेद पुरुष का नेत्र रूप में ऋषियों ने ग्रह्य किया | इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने पूर्व जन्म की परम्परा को जाना कि कैसे मानव का जन्म- मृत्यु का चक्र चलता है तथा पूर्व जन्म की परम्परा चलती ही अब इसी कर्म में हम इस इकाई के अंतर्गत ये जानेगे की कर्मों का फल किस किस प्रकार मिलता है तथा हमारे जीवन में समस्त घटना चक्र उसका प्रतीक कैसे बनता है | | साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे |

3.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |

कर्म और उसके प्रकार भेदों को जानने का प्रयत्न करेंगे | ,

जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है,इसको समझ पायेंगे |

ज्योतिष शास्त्र कैसे कर्म सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है इसको समझने का प्रयत्न करेंगे |

साथ ही भाग्य फल क्या है इसको भी समझ सकेंगे |

3.3 विषय परिचय

संसार में जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत की यात्रा व उसके बाद भी पुनर्जन्म या मोक्ष ये सभी मन्व के शुभा -शुभ कर्मों का परिपाक है |ज्योतिष शास्त्र के फलित का सिद्धांत है कि मनुष्य अपने पूर्वार्जित कर्मों के अनुसार ही सुख और दु:ख प्राप्त करता है | ज्योतिष शास्त्र उसके कर्मविपाक के परिणामों को उसी प्रकार प्रकट कर देता है , जैसे अन्धकार में रखी हुई वस्तु को दीपक का प्रकाश बोध कराता है |

3.4 कर्मफल विचार

भारतीय मनीषा में प्राच्य विद्याओं की पृष्ठ भूमि में प्रथम स्थान दर्शन शास्त्र का है | यही कारण है कि भारत में किसी भी प्रकार का ज्ञान विना दर्शन शास्त्र की कसौटी पर परखे सुमान्य नहीं जाना जाता है ; इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र को भी इसी दृष्टि से देखा- परखा जांचा गया है , मनीषियों के द्वारा |

दर्शन शास्त्र के अनुसार आत्मा- अजर और अमर है | इसका नाश कभी नहीं होता है , नाशवान तो शरीर है इस सिद्धांत से सभी सुपरिचित होंगें | यह केवल कर्मों के प्रभाव से अनादी काल से अनवरत अनेकानेक योनियों को बदलता रहता है | प्राणी मात्र के शरीर में रहने वाला यह तत्व , नित्य एवं चैतन्य है और केवल कर्मानुबंध के कारण यह परतंत्र एवं कर्म को करने के बाद अनिवार्य एवं अपरिहार्य रूप से मिलने वाले फल से अनुबंधित होना कर्मानुबंध कहलाता है या कर्मफल कहलाता है | यद्यपि आत्मा स्वयम कुछ भी नहीं करता | किन्तु आत्मा से चेतना पाकर जड़, मन एवं इन्द्रियाँ सभी कर्मों को करती है |यदि आत्मा का सम्पर्क न हो तो सरीर जड़ या शव की अवस्था में चला जाय और तब कर्म करने का प्रश्न ही नहीं होता | इसलिए मन और इन्द्रियों द्वारा कर्म करने का मुख्य कारण आत्मा का सम्पर्क है, जो इन्हें चेतना प्रदान कर सक्रीय करता है : अत: मन एवं इन्द्रियां के द्वारा किये जाने वाले कर्म का उपचार आत्मा करता है और किये गए कर्मों के फल का उपभोक्ता है |

वैदिक दर्शनों के अनुसार कर्म के तीन भेद होते हैं - 1. संचित 2. प्रारब्ध 3. क्रियमाण | किसी के माध्यम से किया गया कर्म वर्तमान क्षण तक - चाहे वह इस जन्म का हो या जन्मान्तरों के संचित कहलाता है |

संचित के उस भाग को प्रारब्ध कहते हैं , जिसका फल मिलना प्रारम्भ हो चुका है | और जिन कर्मों को हम कर रहे हैं या भविष्य में करेंगे वे सब क्रियमाण कहलाता है |

फल परिपाक की दृष्टि से जन्म जन्मान्तरों से लेकर आजतक के कर्मों का फल संचित फल कहलाता है | इन संचित कर्मों का फल एक साथ भोगना सम्भव नहीं है | क्यूंकि इन कर्मों के परस्पर विरोध या भिन्न होने के कारण उनका फल भीपर्सपर विरुद्ध या भिन्न होता है | अत: इनका फल भोगने के लिए एकैक - कर्म अपनाना पड़ता है | अन्यथा व्यवस्था भंग हो सकती है | परिणामत: संचित कर्मों में से जितने कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को यह जीवन मिला है ; केवल उतने ही कर्मों या उसी भाग {अंश} को प्रारब्ध कहते हैं |

तथा जो कुछ कर्म आज किये जा रहे हैं या भविष्य में किये जायेंगे उनको क्रियमाण का फल कहेंगे | ये तो कर्मका फल सिद्धांत है | अब इसी क्रम में आगे यह जानेंगे कि भाग्यफल क्या है |

3.5 भाग्य फल विचार

प्राय: ऐसा माना जाता है कि कर्म का सिद्धांत भाग्यवाद एवं पूर्व विहित आवश्यकता पर आधारित है | और इसी कारण इस सिद्धान्त में व्यक्तिगत - विकास के लिए कोई अवसर नहीं है | यह मिथ्या धारणा बहुत कुछ अंशोंमें कर्मवाद की अनभिज्ञता पर आश्रित है | यह मानना ही पडेगा कि यह ब्रह्मांड एक नियमबद्ध सृष्टी है | हजारों वर्षों के हमारे दृष्ट एवं लिपिबद्ध अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि संसार एवं जीवन की क्रियाएं कुछ विशेष नियमों के अधीन चलरही है | सुर्य एवं अन्य ग्रह अनुशाशन पूर्वक आवृत्ति के नियमों का पालन करते हैं | उनकी गति , सतही , एवं भगण पूर्ति में पूर्ण रूपेण नियमितता है - तो जो जीव इन ग्रहों पर बसते हैं , उनके जीवन की

गतिविधियों में भी नियमितता होनी चाहिए | वस्तुत: इस ब्रह्मांड में दैवयोग , संयोग या आकस्मिक घटना नाम की कोई चीज नहीं है | यह तो मात्र हमारी अज्ञानता , कमजोरी या उपेक्षावृत्ति को क्षुपाने का सहज साधन है |

भारतीय ज्योतिष के प्रवर्तक ऋषियों या इसका विकास करने वाले आचार्यों ने कहीं भी , किसी निरंकुश विधाता की कल्पना नहीं की ; जो जैसा चाहे जिस तरह से चाहे मनुष्य के साथ मन-मुताबिक़ खेल या खिलवाड़ करें , | इसके विपरीत हमारे मनीषियों चिंतकों ने स्पष्ट शव्दों में घोषणा की है , कि इस ब्रह्मांड में घटने वाली प्रत्येक घटना एक सुनिश्चित नियम द्वारा बंधी है |

मनुष्य मात्र को उसके वर्तमान जीवन में जो कुछ भी मिल रहा है , वह कर्म के नियमों द्वारा सुनियोजित एवं सुनिश्चित है | हमारे ऋषियों का मत है, कि एक बार कर्म करने के बाद मनुष्य उसका फल अवश्य पायेगा या भोगेगा क्यूंकि कर्म - फल भोगे बिना नष्ट नहीं हो सकता है |

यद्यपि वह कर्म करने या न करने में अपनी सवतंत्र इच्छाशक्ति का प्रयोग उपुर्युक्त कर सकता है | किन्तु जब एक बार एक कर्म कर दिया जाता है , तो कर्मवाद के अनुसार उसके अनिवार्य एवं अपरिहार्य फल को भोगने से बचने का कोई रास्ता नहीं है | मनुष्य अपनी स्वतंत्र बुद्धी द्वारा फल की अनुभूति में बहुत कुछ अंशों तक तारतम्य उत्पन्न कर सकता है | अथवा वह अपनी लगन एवं निष्ठा के साथ विविधुपायों के द्वारा फल के क्रम का आगे या पीछे कर सकता है | और सबसे बड़ा सामर्थ्य मनुष्य का यह है , कि वह प्रतिकूल परिस्थितियों में या संकट के क्षणों में सतत प्रयाश से अपना भविष्य बना सकता है | इस प्रकार मनुष्य कृत कर्मों का फल भोगते हुए भी अपने नयें भाग्य का सृजन कर सकता है |

इसलिए कहा भी गया है - **"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम | नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि"** ||

यदि इस शास्त्र में भाग्यवाद अनिवार्य होता तो प्रतिकूल ग्रहस्थिति एवं परिस्थिति का शान्ति हेतु किसी भी प्रकार के उपाय की यहाँ चर्चा नहीं की जाती | ज्योतिष शास्त्र के सभी ग्रन्थों में अनिष्टकारी ग्रह योग , दशा एवं गोचर की शान्ति के लिए अनेक प्रकार के उपायों का वर्णन एवं विवेचन इस बात का स्कश्य है, कि यह शास्त्र किसी भी प्रकार के भाग्यवाद में न तो आस्था रखता है और नहीं आक्श्य लेता है |

होरा शास्त्र के आचार्यों के अनुसार कर्म एवं भाग्यत एक दुसरे के पूरक या एक ही सिक्के के दो पहलू हैं | इन दोनों का सम्बन्ध कार्य- कारण सम्बन्ध के समान सहज और अन्योंन्याश्रय है | क्यूंकि कर्म के द्वारा भाग्य का सृजन होता है और इनके द्वारा नयें कर्मों के बंधन से कर्मफल मिलता है | इस प्रकार किये गए कर्मों के फल को **भाग्य** कहते हैं | जो इस जन्म जन्मान्तरों के हो सकते हैं | भटटोत्पल के अनुसार कर्म एवं भाग्य में जन्म -जनक भाव सम्बद्ध है | इसके अनुसार कर्म भाग्य को पैदा करता है और भाव फिर नयें कर्मों के माध्यम से भाग्य का सृजन करता है | इस प्रकार मनुष्यों की पीढी के समान कर्म का सिलसिला चलता रहता है | किन्तु मनुष्य अपने भाग्य का स्वयम विधाता है |

संचित , प्रारब्ध , क्रियमाण , ज्योतिस शास्त्र इन तीनों कर्मों और उसके फलों का विचार करने के लिए तीन बिभिन्न प्रविधियों का आश्रय लेता है , संचित कर्मों के फल के लिए आधान कुण्डली, एवं जन्म कुण्डली के योगों द्वारा प्रारब्ध के फल का विचार दशाओं द्वारा तथा क्रियमाण कर्मों का विचार गौचर द्वारा किया जाता है |

यही कारण है , कि अंधापन , कानापन , गुणगा पण , वहिरापन , लंगड़ा एवं लूलापण आदि जन्मजात रोगों का विचार करते समय होराशास्त्र के आचार्यों ने गर्भाधान एवं जन्म कुंडली के योगों को महत्व दिया | ये जन्मजात रोग दशा , अन्तर्दशा एवं गोचर से सापेक्षता नहीं रखते हैं | जबकि वाट, पित्त एवं काफ के विकारों से उत्पन्न होने वाला शारीरिक एवं मानसिक रोग अंगों में पैदा होने वाले व्याधियों का विचार योगों के साथ- साथ दशा - अन्तर्दशा के आधार पर किया जाता है | क्यूँ की ये रोग प्रभ्र्ध का फल है और प्रारब्ध संचित का एक भाग है | अत: इनका विचार करते समय हमारे आचार्यों ने योग एवं दशा इन दोनों प्रविधियों का आश्रय लिया है | तथा असंतुलित खान - पान , अनियमित दिनचर्या महामारी एवं संक्रमण जानी रोगों को क्रियमाण कर्मों का फल माना है | चूँकि क्रियमाण कर्म , संचित एवं प्रारब्ध के प्रभाव वश होते हैं | अत: ऐसे रोगों का विचार करते समय योग एवं दशा के साथ - साथ गोचर का भी बारीकी से अध्ययन किया जाता है |

अत: जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों के परिणामस्वरूप होने वाले रोगों का ज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित योग दशा एवं गोचर की विधि ही कर्मों का फल रूप में निर्दिश करते हैं |

3.6 बोधात्मक प्रश्न

1. कर्म कितने प्रकार के होते हैं |

अ. 1

ब. 2

स. 3

द. 4

2. जन्मांग में ग्रह योग ....फल का सूचक है |

अ. संचित

ब. प्रारब्ध

स. क्रियमाण

द. कोई नहीं

3. पूर्वार्जित कर्मों का बोध किस शास्त्र के माध्यम से होता है |

अ. होरा शास्त्र

ब. संहिता

स. गणित शास्त्र

द. कोई नहीं

4. कर्म द्वारा किसका सृजन होता है |

अ. भाग्य का

ब. संसार का

स. कल्याण

द. कोई नहीं

3.7 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने अध्ययन किया कि मानव जीवन में कर्मों का क्या प्रभाव है , और ज्योतिष शास्त्र किस प्रकार कर्मों के प्रभाव का ग्रह योग के माध्यम से फल कथन की प्रक्रिया को बताता है ; अस्तु यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है , कि वर्ह्मांड एवं उसके वासियों के बीच सतत एवं सहज सम्बन्ध मानने का पूरा श्रेय भारतीय मनीषियों को जाता है , जिन्होंने इस सम्बन्ध को स्वीकारा और योतिष और योग शास्त्र , दर्शन शास्त्र के सुमानी सिद्धांतों का प्रतिपादन किया |कर्मों का फल ही हमारे सामने भाग्य रूप में फली भूत होता है , अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप कर्म फल और भाग्यफल का बोध करने में सुगमता होगी |

3.8 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. स. 3
2. ब. प्रारब्ध
3. अ. होरा शास्त्र
4. अ. भाग्य का

3.9 संदर्भित ग्रन्थ / सहायक ग्रन्थ

11. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
12. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
13. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
14. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
15. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

3.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003
2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी
3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
6.मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}
7 .चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता
8. प्रश्नमार्ग / माधव निदान
9.गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }
10.ज्योतिष तत्व /
11.भारतीय ज्योतिष { नेमि चन्द्र शास्त्री }
12.मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}
13. ज्योतिष एवं रोग {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}
14..रोगों का सम्भावित काल {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}
मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं आधारभूत सिधांत { शोध लेखन प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. त्रिविध कर्मों की समीक्षा कीजिए|
2. भाग्यफल फल क्या है इस पर निबंध लिखिए|
3. ज्योतिष और रोग समीक्षा कीजिए|

इकाई- 4 प्राचीन पद्वतियों में रोग विचार

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 विषय परिचय
4.4 आध्यात्मिक चिकित्सा पद्वति
4.5 ज्योतिषीय चिकित्सा पद्वति
4.5.1 ज्योतिष शास्त्र में ग्रह चिकित्सा
4.5.2 रोग विचार में नक्षत्रों की भूमिका -
4.5.3 बोधात्मक प्रश्न
4.6 आध्यात्मिक चिकित्सा
4.6.1 आध्यात्मिक चिकित्सा का मूल है आस्तिकता
4.7 एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्वति
4.8 होमियो पैथी चिकित्सा पद्वति
4.9 यौगिक चिकित्सा
4.10 प्राकृतिक चिकित्सा {नेचुरोपैथी} पद्वति
4.11 सारांश
4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
4.13 सहायक पाठ्य सामग्री

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त नामक द्वितीय खण्ड की तृतीय इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"प्राचीन पद्वतियों में रोग विचार"** है | इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने रोगपरिचय के विषय में जाना कि रोगकारक ग्रह कैसे रोग उत्पन्न करते हैं | साथ ही रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव -जगत पर कैसे पड़ता है, आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना | अब इसी क्रम में हम ये जानेंगे, प्राचीन काल में रोग विचार की कितनी पद्वतियों थी , और उनका स्वरूप , महत्व क्या था कितनी प्रभाव शाली थी , इत्यादि विषयों के बारे में गहनता से अध्ययन करें गे | साथ ही आज के परिप्रेक्ष में इनकी क्या प्रासंगीकता है , इसको जानने का प्रयत्न करेंगे |

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |

पुनर्जन्म परम्परा क्या है व पुनर्जन्म में कर्मों का क्या स्थान है | ,

जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है |

रोगों की सम्भावना व जीवन में समस्त शुभाशुभ घटनाओं में -

पुनर्जन्म के कृत्यों का महत्व से भी परिचित हो पाएंगे |

4.3 विषय परिचय

रोग विचार या चिकित्सा के क्षेत्र में अगर विचार करें प्राचीन पद्वतियों की तो आयुर्वेद विश्व की सबसे प्राचीन पद्वतियों में से एक है , जिसकी प्रासंगीकता आज भी उतनी ही है , जितनी की पहले थी , क्योंकि आयुर्वेद में कही जटिल व्याधियों को जड़ से समाप्त करने की क्षमता है | इसी क्रम में योग चिकित्सा , ज्योतिषीय चिकित्सा , आध्यात्मिक कर्म - विपाक चिकित्सा , एक्यूप्रेशर चिकित्सा, जल चिकित्सा, प्राकृतिक, चिकित्सा {नेचुरोपैथी} विद्या द्वारा , होमियोपैथी | इसके अतिरिक्त मनश्चिकित्सा , आहार चिकित्सा , रसचिकित्सा आदि प्रमुख चिकित्सा प्राचीन काल में बहु प्रचलित थी |

4.4 आयुर्वेद चिकित्सा पद्वति

आयुर्वेदीय चिकित्सा पद्वति विश्व की सबसे प्राचीन पद्वति है | आयुर्वेद चिकित्सा पद्वति को जानने से पहले आयुर्वेद के स्वरुप को जानने का प्रयाश करते हैं | पूर्व की इकाईयों में आपने वैसे आयुर्वेद के स्वरुप को विस्तार पूर्वक जाना तथापि संक्षिप्त रूप से प्रसंगवश जानने का प्रयाश करते हैं |

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधायः परमादरः।।{ख् अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-02, पृ. 2,} धर्म अर्थ एवं काम नामक पुरुषार्थों का साधान आयु है अतः आयु की कामना करने वाले को आयुर्वेद के उपदेशों में परम आदर करना चाहिए। जिस शास्त्र में हित, आयु, अहित आयु, सुख आयु एवं दुःख आयु का वर्णन हो तथा आयु के लिये हित एवं अहित आहार-विहार एवं औषध का वर्णन हो और आयु का मान बतलाया गया हो तथा आयु का वर्णन हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं।

4.4.1 आयुर्वेदाऽवतरण:-

ब्रह्मा स्मृत्वाऽमुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्। सोश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान्मुनीन्।।

तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि ते निरे। तेभ्योऽतिविप्रकीर्णेभ्यः प्रायः सारतरोच्चयः।।ख् अष्टांगहृदयम्, {अध्याय-1, सूत्र-03, 04, पृ. 3,} सर्वप्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण करके दक्ष प्रजापति को पढ़ाया था, प्रजापति ने अश्विनी कुमारों को पढ़ाया था, अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को और इन्द्र ने अत्रिपुत्र अर्थात् आत्रेय आदि महर्षियों को पढ़ाया था और आत्रेय आदि महर्षियों ने अग्निवेश आदि को आयुर्वेद का उपदेश किया था फिर अग्निवेश आदि ने पृथक्-पृथक् तन्त्रों-शास्त्रों की विस्तार के साथ रचना की थी। इधर-उधर बिखरे हुए उन तन्त्रों में से उत्तम सार लेकर यह उच्चय संग्रह किया गया है। इसी ग्रन्थ का नाम अष्टाङ्ग हृदय है।

4.4.2 आयुर्वेद के आठ अंग -

1. कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान्। अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता।।
2. आयुर्वेद के आठ अङ्ग इस प्रकार है -
3. कायचिकित्सा
4. बालचिकित्सा (कौमार भृत्य)
5. ग्रह चिकित्सा (भूतविद्या)
6. उर्द्धांग चिकित्सा (शालाक्य तन्त्र)
7. शल्य चिकित्सा (शल्य-तंत्र)
8. दंष्ट्राविष चिकित्सा (अगद तन्त्र)
9. {ज़रा चिकित्सा (रसायन तन्त्र)
10. वृष चिकित्सा (बाजीकरण तन्त्र)

1. उपरोक्त आठ अंगों में चिकित्सा सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है।

4.4.3 आयुर्वेद में दोषों का वर्णन -

वायुः पित्तं कपफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः। विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च।।{अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-06, पृ. 3,}

- आयुर्वेद में संक्षेपतः तीन दोष माने जाते हैं। यथा - 1. वायु 2. पित्त और 3. कफ। ये तीनों दोष विकृत वृद्ध अथवा क्षीण होकर शरीर को नष्ट मृत अथवा रुग्ण करते हैं और अविकृत (समद्ध रहते जीवित या स्वास्थ्य रखते हैं।

4.4.4 दोषों के मुख्य स्थान एवं प्रकोप का काल -

ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः। वयोऽहो रात्रिभुक्तानां तेऽन्त-मध्याऽऽदिगाः क्रमात्।।ख् अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-07, पृ. 4,

- यद्यपि ये तीनों दोष समस्त शरीर में व्याप्त रहते हैं, तथापि नाभि से निचले भाग में वायु का, नाभि एवं हृदय के मध्य भाग में पित्त का और हृदय के उपरि भाग में कफ का आश्रम है और यद्यपि ये तीनों दोष सर्वदा गतिशील रहते हैं। तथापि नमस् के अन्त काल (वृद्धावस्था) में, मध्यम काल (यौवनद्ध में तथा आदिकाल (बाल्यकालद्ध में और दिन, रात्रि तथा भुक्त के अन्त, मध्य तथा आदिकाल में विशेष रूप से गतिशील होते हैं।

4.4.5 दोषों का अग्नि और कोष्ठ पर प्रभाव -

तैर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः। कोष्ठः क्रूरो मृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः समैरपि।।ख् अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-08, पृ. 4,

- इन दोषों के प्रभाव से अग्नि (जठराग्नि) भी क्रमशः विषम (वायु से तीक्ष्ण पित्त से तथा मन्द (कफ से) होती है और इन तीनों के सम रहने पर अग्नि भी सम रहती है और कोष्ठ भी वायु से क्रूर, पित्त से मृदु तथा कपफ से मध्य रहता है और तीनों के सम रहने से मध्य रहता है।

4.4.6 दोषों से गर्भ की प्रकृति का वर्णन -

शुक्रार्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषक्रिमेः। तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक्।।

समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा निन्द्या द्विदोषजाः।।ख् अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-9, 10, पृ. 5,

गर्भाधान के समय जनक के शुक्र तथा जननी के आर्त्तव में अधिकता से अस्थित इन तीनों दोषों से गर्भ की क्रमशः तीन प्रकृतियाँ बनती हैं - वायु से हीन प्रकृति, पित्त से मध्य प्रकृति और कपफ से उत्तम प्रकृति और वह सब में श्रेष्ठ होती हैं और जो प्रकृतियाँ दो-दो दोषों के संसर्ग से बनती हैं, वे निन्दनीय होती हैं। इस प्रकार प्राणियों की प्रकृति सात की होती है। शुक्र एवं आर्त्तव में वातादि दोषों की उपस्थिति रहने पर भी गर्भादान वैसे ही हो जाता है जैसे विष में भी विषकृमि की उत्पत्ति हो जाती है अथवा यो पहले गर्भ में वातादि दोषों के गुण-दोष वैसे आ जाते हैं, जैसे विष-क्रिमि में विष के।

4.4.7 धातु तथा मल का वर्णन -

रसाडसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्ज-शुक्राणि धातवः। 'सप्तदूष्याः' मला-मूत्रशकृत्स्वेदादयोऽपि च।।{अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-13, पृ. 5,}

- आयुर्वेद में रस, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र। ये सात द्रव्य धातु कहे जाते हैं और मूत्र, पुरीष एवं स्वेद आदि ''मल'' कहे जाते हैं और सब दूष्य अर्थात् दूषित होने वाले हैं। वृद्धिः समानैः सर्वेषां विपरीतैर्विपर्ययः।

अर्थात् शरीराश्रित उक्त सब दोष, धातु तथा मलों के समान गुण वाले द्रव्यों का सेवन करने से उन (दोष, धातु एवं मलद्ध की वृद्धि होती है, विपरीत गुण वाले द्रव्यों के सेवन से क्षय होता है।

4.4.8 रसों का वर्णन और उनका वातादि पर प्रभाव –

रस छः हैं - 1. स्वादु (मधुर-मीठा), 2. अम्ल (खट्टा) 3. लवण 4. तिक्त 5. ऊष्ण 6. कषाय। ये सब रस भिन्न द्रव्यों में पाये जाते हैं या उनसे प्राप्त किये जाते हैं और ये पूर्व बलकारक होते हैं अर्थात् मधुर रस सबकी अपेक्षा बलकारक और कषाय सब की अपेक्षा बलनाशक होता है और प्रथम तीन रस (मधुर, अम्ल एवं लवण) वायु को नष्ट करते हैं और तिक्त आदि तीन रस कपफ को नष्ट करते हैं। कषाय, तिक्त एवं मधुर रस पित्त को नष्ट करते हैं और इससे विपरीत रस वात, पित्त एवं कफ को करते या बढ़ाते हैं।

4.4.9 रोग एवं आरोग्य के कारण –

कालार्थकर्मणां योगो हीन-मिथ्याऽतिमात्रकः। सम्यग्योगश्च विज्ञेयो रोगाऽऽरोग्यैककारणम्।।{अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-19, पृ. 6,} काल, अर्थ तथा कर्म के हीनयोग, मिथ्यायोग एवं अतियोग रोग के एकमात्र कारण होते हैं और काल, अर्थ एवं कर्म का सम्यक् योग आरोग्य का एकमात्र कारण होता है। काल तीन प्रकार का होता है - 1. शीतकाल 2. उष्णकाल और 3. वर्षाकाल। इन तीन कालों का वर्ष होता है। यहाँ यही काल अभिप्रेत है। इन कालों में शीत आदि का अधिक पड़ना ''अतियोग'' थोड़ा पड़ना हीनयोग तथा विपरीत पड़ना ''मिथ्यायोग'' कहलाता है । दुःख आदिद्ध है। अर्थात् जब दोष विषम हो जाते हैं, तब कोई न कोई रोग हो जाता है और उन दोषों के साम्य (सम अवस्था) का नाम आरोग्य है अर्थात् जब वे सम अवस्था में रहते हैं, तब आरोग्य बना रहता है इसी का नाम ''सुख'' है।

रोग दो प्रकार के होते हैं - 1. निज (वातादि दोषों की विषमता से उत्पन्न) और 2. आगन्तु (अभिघात आदि बाहरी कारणों से उत्पन्न)। रोगों के अधिष्ठान भी दो हैं - 1. काम अर्थात् शरीर और 2. मनस्। मनस् के दोष दो हैं - (1 रज (रजोगुण और (2 तमस् (तमोगुण।

4.4.10 रोगी एवं रोग की परीक्षा –

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम्। रोगं निदान-प्राग्रूप-लक्षणोपशयाऽऽप्तिभिः।।{अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-22, पृ. 7-8,} दर्शन, स्पर्शन तथा प्रश्न से रोगी की परीक्षा करनी चाहिए और निदान, पूर्वरूप, लक्षण, उपशय तथा सम्प्राप्ति से रोग की परीक्षा करनी चाहिए। आयुर्वेदिक साहित्य में देश शब्द से दो प्रकार का देश माना जाता है। 1. भूमि देश और 2. देह देश। शरीर के भिन्न-भिन्न अवयव जैसे-

शिरोदेश, उदरदेश या वक्षोदेश आदि। भूमिदेश तीन प्रकार का माना जाता है - 1. जाङ्गल देश या जङ्गलदेश, इस भूदेश में वायु अधिक बहता है और वायु के रोग भी अधिक होते हैं। 2. अनूपदेश - इस भूदेश में जल अधिक रहता है और कफ के रोग भी अधिक होते हैं और 3. साधारण देश के रोग भी अधिक नहीं होते हैं। इस भूदेश में तीनों दोष समावस्था में रहते हैं, फलतः अधिक रोग नहीं होते हैं।

4.4.11 काल एवं औषध के भेद –

क्षणादिर्व्याध्यवस्था च 'कालो' भेषजयोगकृत्। शोधनं शमनं चेति समासादौषधं द्विधा।। {अष्टांगहृदयम्, अध्याय-1, सूत्र-24, पृ. 8,} आयुर्वेद में काल शब्द से दो समयों का बोध होता है, अतः वह दो प्रकार का माना जाता है।

1. क्षण अर्थात् प्रातःकाल, सांयकाल आदि और 2. रोग की आमावस्था एवं जीर्णावस्था आदि। इन दोनों के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग किया जाता है और संक्षेपतः औषध अर्थात् चिकित्सा भी दो प्रकार की होती है। 1. शोधन अर्थात् वमन विरेचनादि रूप और 2. शमन अर्थात् दोष शामक ।

4 .5 ज्योतिषीय चिकित्सा पद्धति

हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में चिकित्सा ज्योतिष का भी अपना महत्वपूर्ण स्थान था | क्यूंकि प्राचीन काल में आयुर्वेद के विद्वानों को भी ज्योतिष शास्त्र का सम्यक ज्ञान होता था ; ज्योतिष और आयुर्वेद शास्त्र एक दुसरे के पूरक हैं | क्यूंकि आयुर्वेद की अपेक्षा ज्योतिष शास्त्र में कर्मजन्य रोगों के विषय में सप्रमाण शास्त्रीय चिंतन अधिक व्याप्त रूप से है | यही कारण है, कि ज्योतिष शास्त्र रोगोत्पत्ति काल के पूर्व निर्धारण में अन्य चिकित्सा शास्त्रों की अपेक्षा अधिक प्रमाणिकता व सटीकता है |

ज्योतिष शास्त्र की रोगों के विषय में स्व मान्यता है कि प्रत्येक छोटा - बड़ा रोग पूर्वार्जित कर्मों के प्रवाह से उत्पन्न होता है | प्राय: देखने में आता है , कि नियमित रूप से जीवन यापन करने वाले लोग , अर्थात जो नियम पूर्वक भोजन करते हैं संयमित आहार - विहार करते हैं ऋतुचर्या के अनुसार वो भी अनायास वीमार हो जाते हैं , तथा ठीक इसीके विपरीत जो लोग अनियमित जीवन यापन करते हैं ,अर्थात जिनका खान- पान अनियंत्रित रहता है वो भी स्वस्थ रहते हैं , इसका कारण अगर ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से देखा जाय तो , ग्रह योग दिखाई देते हैं , और ज्योतिष शास्त्र की यह एक बड़ी विशेषता है , कि कुंडली में घटित ग्रह योगों के माध्यम से यह पूर्व में ही पता चल जाता है , कि किस व्यक्ति को कब , कोन सा रोग किस काल खंड में होगा साथ ही यह भी पता लग जाता है कि रोग साध्य होगा कि असाध्य ; इसलिए प्राचीन काल में ज्योतिषीय चिकित्सा { ग्रह चिकित्सा } अधिक प्रभाव शाली थी, इसका अभिप्राय ये नहीं है कि आज ज्योतिषीय चिकित्सा प्रभावशाली नहीं है लोग पाश्चात्य संस्कृति की देखा - देखी कर रहे हैं जिसके कारण अपनी संस्कृति व सभ्यता से वंचित होते जारहे हैं | दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि , आज शास्त्र मर्मज्ञों की कमी का होना|

4.5.1 ज्योतिष शास्त्र में ग्रह चिकित्सा –

जीवन के घटनाचक्र , जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है -का विचार करने का मुख्य उपकरण योग है | जातक ग्रन्थों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व होते हैं - ग्रह , राशि , एवं भाव |

होरा ग्रन्थों में ग्रह शील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशियों , उच्च , नीच , मूलत्रिकोण राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री , उनकी दृष्टि , उनके षड्बल , उनका शुभाशुभ , उनकी अवस्थाएँ एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है | जिसकी विस्तृत चर्चा आगे की इकाइयों में की गई है |

और सामान्य जातक ग्रन्थों में लग्नादि द्वादश भाव, उनके विचारणीय विषय , उनके केन्द्र , त्रिकोण , पणफर , आपोक्लीम , त्रिक, त्रिषडाय द्विद्वादश, मारक उपचय एवं अनुपचय आदि संज्ञाएँ आदि का प्रतिपादन किया गया है | इन सबकी जानकारी होरा ग्रन्थों में मिलती है और इन्हीं ग्रन्थों में राशिशील के निरूपण - प्रसंग में चार , स्थिर द्विस्वभाव षोडश वर्ग , राशिबल पारिजातादि संज्ञाएँ आदि को भी प्रति पादन किया गया है इस अध्ययन सामग्री में ग्रह,राशि,भाव के बारे में सामान्य बातों का उल्लेख इसलिए नहीं किया जा रहा है , कि इससे अनावश्यक विस्तार होगा | प्रबुद्ध शिक्षार्थी इन सब प्रारम्भिक बातों से परिचित होंगें | फिर भी प्रसंगवश आगे की इकाइयों में कुछ अंश इन सबके मिलेंगे , फिर भी इन की जानकारी के लिए होरा ग्रन्थों का अवलोकन कर सकते हैं | यहं पर रोग परिज्ञान के प्रसंग में आवश्यक ग्रह , राशि एवं भाव के बारे में उन्हीं बातों का विचार किया जाएगा , जिनके विना रोगों का ज्ञान करना संभव नहीं है | कोन सा ग्रह किस धातु एवं तत्व का प्रतिनिधित्व करता है ? उसका कद एवं रंग - रूप कैसा है ? वह शरीर के किन - किन अंगों को प्रभावित करता है ? और वह किन - किन रोगों को पैदा कर सकता है ? इन सब बातों का होरा ग्रन्थों में सोदहरण वर्णन मिलता है | आगे की इकाइयों में इसकी विस्तृत चर्चा की गई है |

4.5 .2 रोग विचार में नक्षत्रों की भूमिका –

ज्योतिष शास्त्र में अश्विनी आदि 27 नक्षत्र प्रसिद्ध हैं | फलित ग्रन्थों में अभिजित नामक २८ वाँ नक्षत्र भी माना गया है | यह उत्तराषाढा के बाद और श्रवण के पहले आता है | यह नक्षत्र मध्यमान से 19 घटी का होता है , जब कि अन्य नक्षत्र माध्यम मान से 60 घटी के होते हैं | ज्योतिष शास्त्र के सामान्य व्यवहार में इसका उपयोग नहीं है और रोग विचार में भी इसकी कोई ख़ास भूमिका नहीं होती है | अत: 27 नक्षत्रों के आधार पर ही रोगों का विचार किया जाता है | नक्षत्रों का सामान्य परिचय इस शास्त्र के सामान्य ग्रन्थों से किया जा सकता है | यहाँ पर नश्तरों का रोगों से क्या सम्बन्ध है ? और किस नक्षत्र में रोग होने पर वह कितने समय तक रहता है ? इन सब बातों का संक्षिप्त विवरण आप इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत अध्ययन करेंगे | इसी क्रम में राशियों व भावों के माध्यम से भी रोगों का ज्ञान किया जाता है | रोगों के सन्दर्भ में ज्योतिष की प्राविधि अति प्राचीन रही है | जिसकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही है , जब सभी उपाय करने के बाद स्वास्थ्य

लाभ नहीं होता , तब ज्योतिष शास्त्र की शरण में जाने से मार्ग दर्शन प्राप्त होता है | ज्योतिषीय चिकित्सा के संदर्भ में आप इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत समग्र अध्ययन करेंगे |

4.5.3 बोधात्मक प्रश्न

1. ज्योतिषीय चिकित्सा पद्वति एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा पद्वति है |

क . सत्य ,ख.असत्य

2. सत्य चुनें -

क. ज्योतिष में कर्मजन्य व्याधियों का सही आंकलन किया जा सकता है |

ख. ज्योतिष शास्त्र जन्य व्याधियों को ही बताने में समर्थ है |

ग. ज्योतिष शास्त्र कर्मज और दोषज सभी व्यदियों के विषय में साध्यासाध्यता का आंकलन करता है |

क . सत्य ,ख.असत्य

3. ग्रह , राशी, भावों के शुभाशुभ वश ही रोगों का कथन होता है |

क . सत्य ,ख.असत्य

4. दशा के माध्यम से भी रोगों का आंकलन किया जाता है |

क . सत्य ,ख.असत्य

4.6 आध्यात्मिक चिकित्सा पद्वति :-

आध्यात्मिक चिकित्सा - ज्ञान , निदान एवं विज्ञान का पूर्ण तन्त्र है |इसमें जीवन की दृश्य - अदृश्य संरचना का सम्पूर्ण बोध है , इसी के साथ यहाँ जीवन के दैहिक - दैविक एवं आध्यात्मिक रोगों के निदान की सूक्ष्म विधियों का समग्र ज्ञान है , इतना ही नहीं इसमें इन सभी रोगों के सार्थक समाधान का प्रायोगिक विज्ञान भी समाविष्ट है , जो मानव जीवन की सम्पूर्ण चिकित्सा के ऋषि संकल्प को दोहराता है |

4.6.1 आध्यात्मिक चिकित्सा का मूल है आस्तिकता :-

आस्तिकता के अस्तित्व को झुठलाना संभव नहीं यह इतना स्पष्ट है जितना की हम स्वयं , हमारा अपना जीवन जिन्हें जीवन की सम्पूर्णता का अहसास होता है , वे आस्तिकता की अनुभूति के बिना नहीं रहते जो आस्तिकता को नकारते हैं , दरसल वे जिन्दगी को नकारते हैं आस्तिकता का मतलब जीवन की होने की सच्ची स्वीकारोक्ति , जीवन और जगत के संबंधों की सक्षम व सघन अनुभूति | प्रारब्ध के सुयोग - दुर्योग जीवन में सुखद- दुखद परिस्थितियों की सृष्टी करते हैं , प्रारब्ध का सुयोग उदय होने से अनायास ही सुख सुविधाएं व् सद स्वास्थ्य का आगमन होता है , जबकी

यदि दुर्भाग्य का उदय होने से ये सब में न्यूनता का अना वा दुखों का आगमन निश्चित है | मनुष्य जीवन में प्रारब्ध का यह सिद्धांत भागयवादी नहीं बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि की सूक्ष्मता की पारदर्शिता है |

तंत्र की तकनीकी प्रत्येक स्थिति में असरदार सिद्ध होती है | आध्यात्मिक चिकित्सा के प्रयोग से जातक के दुःख , दुर्भाग्य , दोष पीड़ा विकृति , विरोध आदि के निवारण के लिए करते हैं , तंत्रात्मक विधियाँ ये सभी आध्यात्मिक चिकित्सा के अंतर्गत आती है | ,

4.7 एक्यूप्रेशर चिकित्सा पद्धति :-

प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में एक्युप्रेशर भी एक बहुपयोगीप्रणाली थी, जिसके द्वारा शरीर के विभिन्न हिस्सों के महतवपूर्ण बिन्दुओं पर दबाव डालकर रोगों का निदान किया जता था | मानव शरीर शिर से लेकर पैर तक आपस में जुड़ा है| तथा हजारों नसें , रक्त धमनियों , मांसपेसियों , स्नायु, और हड्डियों के साथ आँख , नाक, कान, ह्रदय , फेफड़े दांत नाडी आदि आपस में जुड़े हुए हैं | और मानव शरीर रुपी मशीन को बखूबी चलाते हैं अत: एक बिंदु पर दबाव डालने से उससे जुड़ा पूरा भाग प्रभावित होता है | यह पद्धति प्राचीन भारत की प्रसिद्ध चिकित्सा पद्धति में से एक रही है | जिसकी उपयोगिता आज भी उतनी ही बनी हुई है |

4.8 होमियो पैथी चिकित्सा पद्धति:-

होम्योपैथी की खोज एक जर्मन चिकित्सक , डॉक्टर .क्रिश्चन फेडरिक सैमुएल हैनिमैन {1755 - 18 43}, द्वारा अठारहवी सदी के अंत के दशकों में की गई थी | यह समम् शमयति" या "समरूपता" दवा सिद्धांत पर आधारित एक चिकित्सीय विधा है | यह दवाओं के द्वारा रोगों की चिकित्सा करने वाली ऐसी विधि है, जिसमें किसी स्वस्थ व्यक्ति में प्राकृतिक रोग का अनुरूपण करके समान लक्षण उत्पन्न किया जाता है , जिससे रोगग्रस्त व्यक्ति का उपचार किया जा सकता है | " समरूपता" के सिद्धांत की इस अवधारणा को हिप्पोक्रेट्स और पेरासेल्सस द्वारा भी प्रतिपादित किया गया था, लेकिन डॉ. हेनिमैन ने इस तथ्य के बावजूद की वह ऐसे युग में रहते थे जहाँ आधुनिक प्रयोगशाला के तरीके लगभग अज्ञात थे , इसे वैज्ञानिक स्तर पर सिद्ध किया |

होमियोपैथी दवाओं को पशुओं , पौधों,खनिज, के अवशेष और इनी प्राकृतिक पदार्थों से उर्जाकरण या अंत:शक्तिकरण नामक एक मानक विधि के माध्यम से तैयार किया जता है , जिसमें दवाओं के अंत: निहित उपचारात्मक शक्ति को अधिकतम बढाने के लिए लगातार तनुकरण और ह्ल्लन शामिल किया जाता है | इस प्रकार शक्तिकरण के माध्यम से तैयार की गई दवाएं बीमारियों का शमन करने में पूर्ण रूप से कारगर सिद्ध होती है | भारत में होम्योपैथी लगभग दो सो साल पहले आरम्भ की गई थी , आज यह भारत की बहुल वादी स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली का एक महत्वपूर्ण अंग है | {विकिपीडिया }

4.9 यौगिक चिकित्सा :-

यौगिक चिकित्सा से तात्पर्य योग विज्ञान अर्थात यौगिक क्रियाओं द्वारा विज्ञान अर्थात यौगिक क्रियाओं द्वारा रोग निवारण करना ही योग चिकित्सा कहलाती है | आसन , प्राणायाम आदि समस्त यौगिक प्रक्रियाओं का उपयोग कर विभिन्न रोगों की चिकित्सा करना ही योगिक चकित्सा का उदेश्य है | इन समस्त प्रक्रियाओं का शरीर की सूक्ष्म से स्थूल क्रियाओं पर विषित प्रभाव पड़ता है | उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति मनुष्य की अमूल्य निधि है जिसके आधार पर मनुष्य जीवन के सभी उदेश्यों को परिपूर्ण करने के लिए कुछ न कुछ कर्म करता ही रहता है |सांसारिक मनुष्य सदैव सुख की कामना करता है तथा सुख की प्राप्ति के विना समग्र स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव नहीं है | यहाँ हम योग चिकित्सा को संक्षिप्त रूप से जानने का प्रयत्न करेंगे | योग का पारमार्थिक लाभ देखा जाय तो यह परमात्मा के साथ एक होने का रास्ता है | तथा स्था स्वात्म तत्व को जनने की विधा भी,इसके व्यवहारिक लाभ का सीधा प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है | यह शारीरिक एवं मानसिक रोग के शमन की परम वहुपयोगी चिकित्सा पद्वति है | जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आज भी हमको देखने को मिलता है |{विकिपीडिया }

योग चिकित्सा आयुर्वेद के अनुसार - **"या क्रियाव्यधिहारिणी सा चिकित्सा निगद्यते"**

अर्थात विभिन्न क्रियायें संसाधन व उपाय जिनसे रोग का निवारण होता है उन्हें चिकित्सा की संज्ञा दी जाती है | यौगिक चिकित्सा से तात्पर्य योग विज्ञान अर्थात योग की पद्वति से निदान करना ही योग चिकित्सा है , सामान्य शव्दों में कहा जाय तो यौगिक संसाधनों का वह समूह { यम,नियम,आसन , ध्यान धारणा प्राणायाम षट्कर्म आदि }जिससे व्याधि की अवस्था से रोगी को स्वास्थ्य लाभ में सतत उन्नति मिले उसे यौगिक चिकित्सा कहते हैं | यह हजारों वर्ष पुरानी परम्परा वर्तमान में भी उतनी ही प्रभावी है जितनी की पहले थी |{विकिपीडिया }

4.10 प्राकृतिक चिकित्सा {नेचुरोपैथी} पद्वति :-

नेचुरोपैथी /Naturopathy}एक वैकल्पिक चिकित्सा - पद्वति एवं दर्शन है जिसमें प्राकृतिक स्वव चिकित्सा {self- healing } अनाक्रमक {non - in vasive } आदि कहे जाने वाले तरीकों का उपयोग होता है जिन्हें छद्मवैज्ञानिक तरीके कहा जा सकता है | प्राकृतिक चिकित्सा का दर्शन और विधियाँ प्राणतत्ववाद{vitalism}और लोक चिकित्सा पर आधारित है न कि प्रमाण - आधारित चिकित्सा {EBM}पर | {विकिपीडिया }

प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत रोगों का उपचार व स्वास्थ्य - लाभ का आधार है - रोगाणु से लड़ने की शरीर की स्वाभाविक क्षमता | प्राकृतिक चिकित्सा के अंतर्गत अनेक चिकित्सा पद्वतियों आती हैं , जैसे - जल चिकित्सा , होमियोपैथी , सूर्य, चिकित्सा, रंग चिकित्सा, एक्यूपंचर,, मृदा, चिकित्सा , ध्वनी चिकित्सा आदि | प्राकृतिक चिकित्सा के प्रचलन में विश्व की कई चिकित्सा पद्वतियों का योगदान है |

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली चिकित्सा की एक रचनात्मक विधी है , जिसका लक्ष्य प्रकृति में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों के उचित इस्तेमाल द्वारा रोग का मूल कारण समाप्त करना है | यह न केवल एक चिकित्सा पद्वति है बल्कि मंनव शरीर में उपस्थित आंतरिक महतवपूर्ण शक्तियों या

प्राकृतिक तत्वों के अनुरूप एक जीवन शैली है | यह जीवन कला तथा विज्ञान में सम्पूर्ण क्रान्ति है |

4.5.3 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर -

1. क

2. क

3. ग

4. क

4.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हमने भारतीय प्राचीन चिकित्सा पद्वतियों के बारे में जाना , उस चिकित्सा पद्वति में कैसे चिकित्सा की जाती थी , कैसा उसका स्वरुप था ,इन सभी विषयों को आप ने जाना|

आज के भौतिक युग में भी हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्वतियाँ बहुत ही प्राशंगिक है | जिसके प्रभाव को पूरा विश्व स्वीकारता है | आयुर्वेद और योग जैसी प्राच्य स्वास्थ्य विधाएं आज समूचा विश्व अपना रहा है , इसी प्रकार भारतीय चिकित्सा पद्वातियाँ को भी विश्व भर में अपनाया जा रहा है | जिससे समग्र मानव जाती शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का लाभ ले रहे हैं |

4.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास
4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

4.13 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोक:, पं श्री रामकृष्ण पराशर:, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
10. वीकीपीडिया अंतर्जाल

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्राचीन चिकित्सा पद्वतियों का परिचय दीजिये |

2. प्राकृतिक चिकित्सा के स्वरुप का विस्तृत वर्णन करें |

3. ज्योतिषीय चिकित्सा का परिचय दीजिये |

इकाई- 5 रोगों की साध्यासाध्यता

इकाई की संरचना

5 .1 प्रस्तावना
5 .2 उद्देश्य
5 .3 विषय परिचय
5.4 आयु
5.4.1 आयु के प्रकार
5.5 अरिष्ट योग
5.5.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5 .6 मध्यमायु योग
5 .7 अमितायु योग
5.8 रोगारम्भ काल से रोगों की साध्या असाध्यता का विचार
5.8.1 साध्य रोग
5.8.2 असाध्य रोग
5.8.3 अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्यु दायक रोग
5.8.4.अष्टम स्थान की राशिवश मृत्यु दायक रोग
5.8.5 मृत्यु दायक रोग
5.8.6 रोगी की मृत्यु होगी की नहीं ?
5.9 बोधात्मक प्रश्न
5.10 सारांश
5.11 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर
5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 निबन्धातामक प्रश्न

5 .1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय सिद्धान्त नामक द्वितीय खण्ड की पाँचवी इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"रोगों की साध्यासाध्यता"** है | इससे पूर्व की इकाईयों में आप ने रोगपरिचय के विषय में जाना कि रोगकारक ग्रह कैसे रोग उत्पन्न करते हैं | साथ ही रोगों को जानने की विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रह रोगों की सूचना देते हैं तथा उनका प्रभाव जीव -जगत परकैसे पड़ता है, आदि विषयों के बारे में विस्तृत रूप से जाना | अब इसी क्रम में हम येजानेंगे, कि रोग क्या है | और शास्त्र में किस प्रकार से इसके विषय में बताया गया है, इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे | साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे |

5 .2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |

पुनर्जन्म परम्परा क्या है व पुनर्जन्म में कर्मों का क्या स्थान है | ,

जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों का इस जन्म में कितना महत्व है |

रोगों की सम्भावना व जीवन में समस्त शुभाशुभ घटनाओं में -

पुनर्जन्म के कृत्यों का महत्व से भी परिचित हो पाएंगे |

5.3 विषय परिचय

सामान्यतया रोग दो प्रकार के माने जाते हैं - 1.साध्य एवं 2. असाध्य | जो रोग चिकित्सा द्वारा ठीक हो जाता है , उन्हें साध्य रोग कहते हैं | किन्तु जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं हो पाते , अपितु जीवन भर चलते रहते हैं , या जिनके कारण रोगी की मृत्यु तक हो जाती है , वे रोग असाध्य कहलाते हैं | ज्योतिष शास्त्र के

आचार्यों ने रोग के इस सन्दर्भ { साध्यासाध्यता } में बड़े ही तार्किक प्रमाणिक एवं वैज्ञानिक रूप सेशास्त्रीय ग्रन्थों में दिया है | उसके अनुरूप रोगों के साध्यासाध्यता का निर्णय करने के लिए सर्वप्रथम रोगी के जीवन के बारे में जानना चाहिए कि ; उसकी आयु कितनी शेष है | {प्रश्न मार्ग 9/3 }यदि रोगोत्पत्ति काल में रोगी की आयु समाप्त हो रही हो तो , ये जानना चाहिए कि रोग असाध्य होने वाला है, रोग की असाध्यता के कारण रोगी की मृत्यु होगी | यदि ठीक इसके विलोम आयु शेष है तो रोग साध्य होगा अर्थात उपचार के माध्यम से ठीक हो जाएगा | इसलिए रोग के विषय में जानने के लिए आयु निर्णय जरूरी हो जाता है , इसी बात को चरक संहिता के सूत्र स्थान में आचार्य चरक भी यही कहते हैं और ज्योतिष शास्त्र के आचार्यों ने भी यही बात कही है - **"आयु: पूर्वं परिक्षेत पश्चाद लक्षणमादिशेत अनायुषाम हि मर्त्यानां लक्षणे: किंप्रयोजने:"**|| अत: रोगों की साध्यासाध्यता को जानने के लिए आयु को जानना परम आवश्यक है कि किस ग्रह योग में उत्पन्न जातक की आयु कितनी है अर्थात आयु के प्रकारों जैसे अरिष्ट , अल्पायु , मध्यायु , पूर्णायु परमायु इत्यादि | मृत्यु जब आती है ; तो कोई ना कोई बहाना करके आती है चाहे वह रोग हो या दुर्घटना त्रासदी | अत: शास्त्र वचनों को ग्राह्य करके आयु प्रकरण से समन्धित आयु व उसके प्रकार तथा योगों का संक्षिप्तत: रूप से अध्ययन करते हैं|

5.4 आयु

यदि आयु को परिभाषित रूप से जाने तो जातक के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त के जीवन काल को आयु कहते हैं | ज्योतिष शास्त्र के विद्वान् मनीषियों आचार्यों का कहना है कि - जन्मान्तरों में किये गये कर्मों को भोगने के लिए प्राणी के जीवनकाल को उसकी आयु कहा जाता है | यह आयु प्रारब्ध आदि कर्म के प्रभाव से दीर्घ ,मध्य या अल्प होती है |{ प्रश्नमार्ग 9/ 45 } जातक शास्त्रों में आयु का निर्णय योग , निसर्गादिभेद एवं दशा के द्वारा निर्णीत आयु को दशायु कहते हैं |

5.4.1 आयु के प्रकार

1. योगायु - योगायु का निर्णय मुख्यतया 6 प्रकार के योगों से किया जता है - **1.सद्योरिष्ट योग , 2. अरिष्ट योग , 3. अल्पायु योग , 4. मध्यायु योग, 5. दीर्घायुयोग , 6. अमितायु योग** |

सद्योरिष्ट योगों में अधिकतम 1 वर्ष की आयु होती है | अरिष्ट योग होने पर 2 वर्ष से 12 वर्ष तक की आयु होती है | अल्पायु योग में अधिकतम 23 वर्ष की, मध्यायु योग में 70 वर्ष तथा दीर्घायु योगों में अधिकतम 100 वर्ष आयु होती है | अमितायु योग होने पर व्यक्ति 100 वर्ष से अधिक जीवित रहता है |{प्रश्नमार्ग अ. 9 श्लोक 54- 58 } इन 6 प्रकार के योगों में से सद्योरिष्ट एवं अरिष्टयोग होने पर ग्रहदशा का विचार नहीं करना चाहिए | इन दोनों प्रकार के योगों मेंप्रभाव वश शुभ या अशुभ किसी की ग्रह दशा में शिशु की मृत्यु हो जाती है | यहाँ योगों का प्रभाव मुख्य माना गया है | यही कारण है कि वैद्यनाथ आदि आचार्यों ने 12 वर्ष की आयु के बाद ही आयुर्दाय का निर्णय करने पर जोर दिया है | {जातक पारिजात 4/1-2 } शेष तीनों योगों -{ अल्पायु, मध्यायु ,एवं दीर्घायु योग } में मारकेश आदि की दशा के आधार पर आयु का निर्णय किया जाता है |{ प्रश्न मार्ग अ. 9/श्लो.57 } तात्पर्य यह है कि किसी सद्योरिष्ट तथा अरिष्ट योग में मृत्यु काल का योग या निर्णय योग या गोचरीय ग्रहस्थिति से हो जाता है | किन्तु अल्पायु , मध्यायु एवं दीर्घायु योगों में ऐसा नहीं होता | अल्पायु योग में 13-सेव 32 वर्ष तक मधयायु योग में 33 से 70 वर्ष तक तथा दीर्घायु में 70 से 100 वर्ष तक आयु होती है | इन योगों में मृत्यु का निर्णय मारकेश ग्रहों की दशा एवं भुक्ति के अनुसार किया जाता है | अमितायु योग होने पर आयुर्दाय का विचार नहीं करना चाहिए | {प्रश्न मार्ग एवं रोगों का सम्भावित काल ,उनकी सध्यासाध्यता प्रो.शुकदेव चतुर्वेद } क्यूँकी इस योग के होने पर मनुष्य की आयु प्राय:100 से अधिक वर्ष की होती है |

2. **सद्योरिष्ट -** जातक शास्त्र के विविध ग्रन्थों में सद्य: अरिष्ट के अनेक योगों का वर्णन आता है | इन योगों के होने पर उत्पन्न शिशु की 1 वर्ष के भीतर मृत्यु हो जाती है | इन योगों में प्रमुख योग इस प्रकार है -

- सांय: काल में चन्द्रमा की होरा में जन्म हो तथा पाप ग्रह राशियों के अंतिम नवांश में हो , तो जातक की शीघ्र मृत्यु होती है | {वृहत्ज्जातक 6/1-4 }
- कुंडली में यदि केंद्र स्थानों में पापग्रह हों तथा चंद्रमा भी इनके साथ हो तो शीघ्र मृत्यु योग बनाता है |
- चंद्रमा के पूर्वार्ध में पाप ग्रह तथा चन्द्र के परार्ध में शुभ ग्रह हो शीघ्र मृत्यु होने की सम्भावना रहती है|
- जन्म लग्न एवं सप्तम भाव से द्वितीय स्थान एवं द्वादश में पाप ग्रह हो तो शीघ्र मृत्यु होती है |

- लग्न एवं सप्तम में पाप ग्रह हो तथा चन्द्रमा पापग्रह के साथ हो और उस पर किसी शुभ ग्रह की दृष्टी न हो तो मृत्यु हो जाती है |
- शनि -मंगल एवं सूर्य - ये तीनों एक साथ अष्टम स्थान में या षष्ठ स्थान में हो तथा शुभ ग्रह से दृष्ट युक्त न हो तब भी मृत्यु योग बनता है|
- लग्नेश नीच राशि में हो या अष्टम स्थान में हो तथा शनि भी नीच में हो या सप्तम में हो तो जातक शीघ्र मर जाता है | {जातक पारिजात 4/20 }
- जन्म के समय सूर्यादि ग्रह बलहीन - होकर आपोक्लीम में हो तो उत्पन्न शिशू 2 या 6 मास के भीतर मर जाता है|
- शनि लग्न या सप्तम स्थान में हो , चन्द्रमा वृश्चिक या जलचर राशि में हो तथा शुभग्रह केंद्र में हो तो जातक की शीघ्र मृत्यु हो जाती है|
- जिसकी कुंडली में गुरु मेष, का या वृश्चिक या मकर का हो तथा प्रात: मध्याह्न या सायंकाल जन्म हो तो वह शिशु 1 माह के भीतर मर जाता है|
- जन्म कुण्डली में अष्टम स्थान में सूर्य , मंगल एवं शनी होतो एक मास के भीतर मृत्यु होती है |
- जिस नक्षत्र में केतु का उदय हुआ हो उस नक्षत्र में जन्म लेने वाला बालक २२ मास के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है|
- दो राशियों की सन्धि में जन्म हो और वह पाप गढ़ से दृष्ट या युत हो तो बालक शीघ्र मर जाता है
- चन्द्रमा केंद्र या अष्टम स्थान में मृत्यु भाव में हो तो बालक शीघ्र मर जाता है|

उपरोक्त अरिष्ट योग ज्योतिष शास्त्र के जातक ग्रन्थों में मिलते हैं|

5.5 अरिष्ट योग

आयु के सन्दर्भ में अरिष्ट योगों के विषय में जानना भी परम आवश्यक है| जिन बच्चों का जन्म अरिष्ट योग में होता है , वे बच्चे इन योगों के प्रभाव वश १२ वर्ष की आयु के भीतर मर जाते हैं| कुछ आचार्यों का यह भी मत है कि योग बच्चे के माता पिटा के उन पापों के द्योतक हैं , जिनके प्रभाव से उसकी मृत्यु होती है | इन योगों को बालारिष्ट भी कहतें हैं| फलित शास्त्र के प्राय: सभी ग्रन्थों में बालकों के

अरिष्ट काल व इन योगों का विस्तार से वर्णन मिलता है | उनमें से कुछ महत्व पूर्ण योग निम्नलिखित हैं-

- जन्म के समय चन्द्रमा छटवें या आठवें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक आठवें वर्ष के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है | यदि उक्त स्थान में स्थित चंद्रमा पर पाप एवं शुभ गढ़ दोनों प्रकार के ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक ४ वर्ष के भीतर मृत्यु को जाता है |
- जन्म लगन में क्षीण चंद्रमा हो तथा केंद्र {१.४.७.१० }एवं अस्थम स्थान में पापग्रह हों तो शिशु की वाल्यावस्था में मृत्यु हो जाती है |
- जन्म कुण्डली में दो पापग्रहों के मध्य स्थित चंद्रमा केंद्र या अस्थम स्थान में हो तो भी उत्पन्न बालक बच्पन में ही मर जाता है |
- राहू से ग्रस्त तथा पापग्रहों के साथ चन्द्रमा लग्न में हो और मंगल अस्थम में हो तो शिशु अपनी माता के साथ मर जाता है |
- यदि जन्म लग्न में निगड , अहि या पाशधर संज्ञक द्रेष्काण हो और उससे क्रूर गढ़ हों तथा उसे उसका स्वामी ग्रह न देखता हो तो बालक ७ वर्ष में मर जाता है |
- लग्न में सूर्य , मंगल एवं शनी हो सप्तम स्थान में वृष या तुला राशी में क्षीण चन्द्रमा हो तथा उसे गुरु न देखता हो तो बालक एक वर्ष में मर जाता है |
- सूर्य , चन्द्रमा एवं मंगल ५वेन स्थान में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न बालक ९ वर्ष में मर जाता है |
- जन्म कुंडली में किसी भी भाव में मकर के नवांश में स्थित शनि हो और उसे बुध देखता हो तो बालक १० माह में मर जाता है |
- सूर्य के साथ स्थित बुध को शुभ ग्रह देखते हों तो बालक राजकुमार जैसे सुख भोगकर ११ वर्ष में मर जाता है |
- चन्द्र लग्न का स्वामी होकर सूर्य शनी के साथ अष्टम स्थान में हो तथा उन्हें शुक्र देखता हो तो बालक १२ वर्ष में मर जाता है |
- लग्नेश या राशीश दुर्बल होकर दु:स्थान में स्थित हो तो राशी की संख्या तुले वर्ष में बालक मर जाता है |

- यदि चन्द्रमा एवं सूर्य के साथ मंगल हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है |
- कर्क या सिंह राशी में लग्न से षष्ट , अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो और उसे सब गढ़ देखते हो तो बालक ६ वर्ष में मर जाता है |
- जन्म कुंडली में केंद्र स्थान में स्थित राहू को पापग्रह देखते हों तो बालक वर्ष भर में मर जाता है |
- जन्म कुण्डली में छठे भाव या आठवें भाव में स्थित चन्द्रमा को शुभ एवं पाप ग्रह देखते हो तो बालक ४ वें वर्ष में मर जाता है | {जात्काभरण अरिष्ट अध्याय श्लोक २०-२६ }
- सूर्य एवं मंगल के साथ चन्द्रमा मिथुन या कन्या शी में हो और उसे एनी गढ़ न देखते हो तो बालक ९ वें वर्ष में मर जाता है |
- यदि चन्द्रमा सप्तम में हो , अष्टमेश लग्न में हो तथा उन्हें सब पाप गढ़ देखते हो तो बालक ३ साल में मर जाता है |
- मंगल की रसहीन में ज्ञू हो तथा गुरु की राशी में मंगल हो तो बालक ४ वर्ष में मर जाता है |
- मंगल की राशी में द्वितीय , षष्ठ या अष्टम स्थान में गुरु हो तो बालक छठे वर्ष में मर जाता है |
- कर्क या सिंह राशी में षष्ट , अष्टम या द्वादश स्थान में शुक्र हो तहा उस पर सब पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो तो ६ वर्ष में बालक की मृत्यु होती है ऐसा उपरोक्त स्थिति जाताकाभरण के अरिष्टा अध्याय में वर्णित है |
- चतुर्थ स्थान में शनि के साथ सूर्य हो तो बालक ९ वर्ष में मर जाता है |
- लग्न में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो ५ वर्ष में बालक मर जाता है |
- अष्टम स्थान में राहू हो और उस पर पापग्रह की दृष्टि हो तो बालक दो वर्ष में मर जाता है |
- केंद्र स्थान में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक १० वर्ष में मर जाता है |

- सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न में राहू हो और उस पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो बालक को ७ वें वर्ष में अरिष्ट होता है |
- चतुर्थ स्थान में राहू तथा केंद्र में चन्द्रमा हो तो बालक १० वर्ष में में मर जाता है |
- अष्टमेश केंद्र में हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो ३२ वें वर्ष में व्यक्ति की मृत्यु होती है |
- पाप ग्रह छठे आठवें , बारहवें स्थान में हो , लग्नेश निर्बल हो तथा किसी शुभ ग्रह से दृष्टि - युत न हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है |
- द्वितीय एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हों, उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा क्रूरषष्ट्यांश में हो तो व्यक्ति की अल्पायु होती है |
- यदि लग्नेश एवं समस्त शुभ ग्रह आपोक्लीम { ३,६,९, एवं १२ } स्थान में हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है |
- जन्म राशी तथा उससे अस्थम स्थान का स्वामी ये दोनों परस्पर शत्रु हो तो लग्नेश एवं अष्टमेश परस्पर शत्रु हों तथा लग्नेश एवं सूर्य आपस में शत्रु हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है |
- यदि लग्नेश की अपेक्षा अष्टमेश बलवान हो , वह केंद्र में हो तथा पाप ग्रह अष्टम एवं द्वादश स्थान में हो तो मानुष अल्पायु होता है |
- यदि केंद्र एवं त्रिकोण में स्थित शुभ ग्रह की लग्नेश पर दृष्टि न हो तथा लग्नेश एवं लग्नेशाधिश्टित राशी के स्वामी पर भी शुभग्रहों की दृष्टि न हो तो मनुष्य की अल्पायु होती है |
- यदि निर्बल अष्टमेश अष्टम में हो या वह केंद्र में हो तथा लग्नेश भी निर्बल हो तो अल्पायु होती है
- अष्टमेश नीच राशि में हो शनी निर्बल हो तथा पाप ग्रह लग्न में हो तो अल्पायु होती है|
- अष्टम में शुभ ग्रह भी हों अष्टमेश बलवान हो तथा लग्नेश निर्बल हो तो अल्पायु होती है |

- ❖ लग्नेश के साथ व्ययेश एवं अष्टमेश हो, तृतीयेश अष्टम में हो इन दोनों को पाप ग्रह देखते हों तो मनुष्य की अल्पायु होती है |
- ❖ केंद्र में पाप ग्रह हों , उन पर शुभ ग्रहों की दृष्टि न हो तथा लग्नेश बलहीन हो तो अल्पायु होती है |

5.5.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ग.

2. क.

3. ख

4. घ

5 .6 मध्यमायु योग

आयु के संदर्भ में आप ने उपरोक्त अल्पायु और बाल्यावस्था में अरिष्ट ठठा मृत्यु के सन्दर्भ में कुछ योगों के विषय में जाना अब आगे इसी सन्दर्भ में मध्यायु के विषय में कुछ योगों का अध्ययन करेंगे | जिन योगों के प्रभाव वश मनुष्य की आयु ३३ वर्ष से ७० वर्ष तक की होती है उन्हें फलित शास्त्र में मध्यमायु योग कहते हैं | ये योग भी दो प्रकार के होते हैं | ये योग भी दो प्रकार के हैं | प्रथम प्रकार के योगों में आयु या मृत्यु के वर्ष का उल्लेख रहता है | तथा दुसरे प्रकार के योगों में किसी वर्ष विशेष का स्पष्टत: उल्लेख नहीं रहता | इस प्रकार के योगों में मारकेश ग्रहों का विविध प्रकार से निर्णय कर उनकी दशा- अन्तर्दशा के अनुसार मृत्यु के वर्ष की जानकारी कर आयु का निर्धारण किया जाता है |

आइये मध्यायु के कुछ प्रसिद्ध योगों का अध्ययन करते हैं जो जातक ग्रन्थों में वर्णित हैं -

1. लग्नेश एवं अष्टमेश शनी एवं चन्द्रमा तथा लग्न एवं होरालग्न इन तीनों के द्वारा आयु का निर्णय करना चाहिए | ये दोनों द्विस्वभाव राशी में हो या इनमें से एक घर तथा दुसरे स्थिर राशी में हो तो मध्यमायू होती है |

2. लग्नेश निर्बल होगुरु केंद्र या त्रिकोण में हो पाप ग्तोरह त्रिक {६,८,१२ }स्थान में हो तो मध्यमायु होती है |

3. लग्नेश केंद्र में गुरु एवं शुक्र के साथ हो तो पूर्ण आयु होती है |

4. तीन ग्रह उच्चराशि में हो, लग्नेश एवं अष्टमेश से युक्त हो तथा अष्टम स्थान में पाप ग्रह न हो तो पूर्ण आयु होती है |

5. अष्टम स्थान में ३ ग्रह हों अथवा ३ ग्रह अपनी उच्च राशि या मित्र स्थान या स्वर्ग में हो तथा लग्नेश बलवान हो तो मनुष्य की दीर्घायु होती है |

6. उच्च राशि में स्थित किसी भी ग्रह के साथ शनि या अष्टमेश हो तो मनुष्य की दीर्घ्यु होती है |

7. पापग्रह तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो , शुभ ग्रह केंद्र - त्रिकोण में हो तथा लग्नेश बाली हो तो मनुष्य की पूर्णायु होती है |

8. षष्ठ , सप्तम एवं अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में पाप ग्रह हों तो दीर्घायु होती है |

9. पाप ग्रह षष्ठ स्थान में हो तथा लग्नेश केंद्र में हो ददीर्घायु प्रदान करते हैं |

10. अष्टमेश जिस राशि में हो , उसका स्वामी जिस राशि में हो , उस राशि का स्वामी तथा लग्नेश ये दोनों केंद्र में हो तो मनुष्य चिरकाल तक जीवित रहता है |

11. सूर्य मंगल एवं शनी ये तीनों चार नवांश में हो , गुरु एवं शुक्र ये दोनों स्थिर नवांश में हो तथा शेष ग्रह द्विस्वभाव राशि के नवांश में हो तो ऐसे योग में उत्पन्न जातक 100 वर्ष जीवित रहता है |

12. अष्टमेश लग्न में हो तथा लग्नेश गुरु एवं शुक्र से दृष्ट युत हो तो पूर्णायु होती है |

13. अष्टमेश अपनी उच्च राशि में हो, शुभ ग्रहों से युक्त तथा दृष्ट हो अष्टम भाव का कारक बलवान हो तो दीर्घायु होता है |

14. शुभ ग्रह अपनी राशी में हो तथा अष्टमेश सप्तम या अष्टम स्थान में हो तो दीर्घायु प्रदान करते हैं |

15. लग्नेश केंद्र में राहू एवं शुक्र के साथ हो या उनसे दृष्ट हो तो दीर्घायु होती है |

16. केंद्र में शुभ ग्रह , अष्टम के अलावा अन्य भावों में पापग्रहों तथा षष्ठ स्थान में चन्द्रमा हो तो ८६ वर्ष की आयु होती है |

17. लग्नेश से केन्द्र में गुरु हो तथा तृतीय षष्ठ , एकादश एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हो तो १०० वर्ष की आयु होती है |

5 .7 अमितायु योग

अमितायु योग में उत्पन्न में उत्पन्न व्यक्ति की आयु १०० वर्ष से अधिक होती है | आचार्य वराहमिहिर एवं भटोत्पल्ल आदि का कथन है कि इस योग में आयुर्दाय की गणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है

आचार्य वैद्यनाथ के अनुसार इन योगों में उत्पन्न मनुष्य की आयु काफी लम्बी होती है , जिसे उन्होंने युगान्तमायु या चिरायु कहा है | इस प्रकार के कतिपय योग जातक ग्रन्थों में मिलते हैं , जो इस प्रकार है |

1. जन्म लग्न में कर्क राशि में चन्द्रमा एवं गुरु हो केंद्र में बुध , शुक्र हों तथा शेष ग्रह { सूर्य, मंगल, एवं शनि } तृतीय , षष्ठ एवं एकादश स्थान में हो तो मनुष्य की अमितायु होती है |

2. सूर्य मंगल एवं गुरू - ये तीनों शनि के नवमांश में नवम भाव में या उसके नवांश में बलवान हो तथा चन्द्रमा लग्न में हो तो मनुष्य की चिरायु होती है |

3. सूर्योदय के समय जन्म हो , गुरु एवं शनी एक ही नवमांश में नवम या दशम भाव में विद्यमान हो तो मनुष्य चिरायु होता है |

4. मेष का अंतिम नवांश लग्न में हो , उसमें गुरु या शुक्र हो वरिश के मध्य नवांश में चन्द्रमा हो तथा मंगल सिंह नवांश में हो तो मनुष्य की असन्ख्यायु होती है |

5. कर्क लग्न हो गुरु केंद्र में गो पुरंश में हो तथा शुक्र त्रिकोण में पाराव्तंश में हो तो मनुष्य की युगांत आयु होती है |

6. इसी प्रकार पराशारादि आचार्यों ने - निसर्गायु , पिन्डायु , लग्नायु , अंशकायु आदि के विषय में भी शतर में योग दिए हैं , यहाँ हम रोगों के सम्बन्ध में सिर्फ यहीं समझने का प्रयत्न करते हैं कि यदि जातक की आयु ठीक होगी तो रोगों से उसकी सदयता भी उतनी ही ठीक होगी , परन्तु यदि आयु ठीक नहीं है तो जातक असाध्य रोगों से जूझ कर मृत्यु को प्राप्त करता है | आप सब अध्येता आयु प्रकरण को संक्षिप्त

रूप से समझ ही गए होंगे; इसी सन्दर्भ में हम रोगों की साध्यता व असाध्यता के विषय में कुछ चर्चा करते हैं -

5.8 रोगारम्भ काल से रोगों की साध्या असाध्यता का विचार

1.यदि रोग आरम्भ काल में निम्न लिखित ग्रह योग में से कोई एक हो तो रोगी की मृत्यु हो जाती है अथवा रोग दीर्घ काल तक चलता है और वह असाध्य हो जाता है |

2. जन्म कुंडली में अष्टमेश , गुलिक ,शनि २२वाँ द्रेष्कान या उसके स्वामी जिस राशी में हो उस राशि में गोचरीय चार्वश शनि गया हुआ हो | {फलदीपिका १७/श्लोक २-५ एवं १९ }

3. जन्म कुंडली में सूर्य के द्वाद्शंश की राशि , अष्टमेश के नवांश की राशि या लग्नेश के नवांश की राशि में रोगारम्भ के समय गुरु एवं सूर्य हो |

4. जन्म काल में जो अष्टमेश या सिरी की राशी हो , रोगारम्भ के समय उस राशि में चन्द्रमा हो |

5. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा उस राशी में हो जिसमें लग्न से २२ वन द्रेष्कान हो |

6. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो |

7. रोगारम्भ के समय चन्द्रमा प्रश्न लग्न से अष्टम स्थान में हो |

8. रोगी की राशी से गुलिक अष्टम राशि में हो |

9. रोगी की जन्म राशि या जन्म लग्न से अष्टम गुलिक हो |

10. रोगी का नक्षत्रेश अष्टम स्थान में हो |

उक्त योगों के अलावा रोगारम्भ के समय यदि निम्नलिखित में से कोई एक दोष हो तो उस समय होने वाला रोग असाध्य होता है , तथा चिकित्सा एवं एनी उपाय करने पर वह ठीक नहीं होता | ये दोष इस प्रकार है -

1. रोगारम्भ कालीन लग्न एवं चन्द्रमा का निर्बल होना |
2. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा पर पाप ग्रहों की दृष्टि |
3. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा की पापग्रहों से युति |
4. जन्म लग्नेश एवं राशीश का अस्त होना या पापाक्रांत होना |

5. जन्म लग्ननेश एवं राशीश का निर्बल होना या त्रिक स्थान में होना |

6. रोगारम्भ के समय अपशकुन एवं अशुभ निमित्तों का होना |

7. तात्कालिक लग्न एवं चन्द्रमा का मृत्यु संज्ञक अंशों में होना |

8. केंद्र त्रिकोण तथा अष्टम स्थान में पाप ग्रह हो |

9. प्रश्न लग्न में पृष्टोदय राशि हो , केन्द्र स्थानों में पाप ग्रह हो तथा चन्द्रमा अष्टम में तो रोगी मर जाता है |

10. प्रश्न कुण्डली में द्वितीय , सप्तम एवं द्वादश स्थान में पाप ग्रह हो तथा लग्न , षष्ठ या अष्टम में चन्द्रमा हो तो रोगी शीघ्र मर जाता है |

5.8.1 साध्य रोग

जो रोग चिकित्सा या एनी उपाय करने से ठीक हो जाते हैं , वह साध्य कहलाते हैं | यदि रोगारम्भ के साथ रोगी की आयु समाप्त न होती हो तथा रोगी की कुंडली में पूर्वोक्त असाध्य रोगों का कोई न कोई योग हो तो रोग साध्य होता है ; इसलिए पूर्व में आयु चर्चा में साध्यता असाध्यता की बात हुई |

जातक शास्त्र के आचार्यों ने कुछ ऐसे योगों को भी बताया है, जिनमें उत्पन्न व्यक्ति का स्वास्थ्य प्राय: आजीवन ठीक रहता है , तथा उसे होने वाले रोग चिकित्सा आदि से ठीक हप जाते हैं | ये योग इस प्रकार हैं -

1. शुभ ग्रह के साथ लग्नेश लग्न में हो |

2. शुभ ग्रह के साथ लग्नेश लग्न में स्थित हो |

3. लग्नेश केंद्र या त्रिकोण स्थान में अपनी उच्च राशी में स्थित हो |

4. शुभ ग्रह से युत या दृष्ट लग्नेश स्व नवांश में हो |

5. लग्नेश केंद्र त्रिकोण या उच्च राशि नवांश में हो तथा लग्न पर शुभ ग्रह की दृष्टि हो |

इत्यादि स्थितियां रोगों की साध्यता की सूचक हैं |

5.8.2 असाध्य रोग

जो रोग चिकित्सा एवं अन्य उपाय करने पर भी ठीक नहीं होते हैं वे असाध्य रोग कहलाते हैं |

ये रोग दो प्रकार के होते हैं १- मृत्युदायक २- आजीवन चलने वाले |

जिस रोग से व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है उसे मृत्यु दायक रोग कहते हैं | तथा जो रोग मनुष्य को जीवन भर कष्ट देता है , उसे आजीवन चलने वाला रोग कहते हैं |

ज्योतिष शास्त्र में अष्टम एवं तृतीय भाव को आयु का पर्तिनिधितव भाव माना गया है | अत: इन भावों में स्थित या इनके देखने वाले ग्रहों के अनुसार आयु को समाप्त करने वाले { मृत्युदायक } रोग का निर्णय किया जाता है | इसके अलावा जातक ग्रन्थों में मृत्यु दायक रोगों के अनेक योगों का भी विस्तार पूर्वक वर्णन किया है |

फलित ज्योतिष में कुण्डली के षष्ठ भाव को रोग कहते हैं | अत: इस भाव में स्थित ग्रह , इस भाव को देखने वाला ग्रह तथा इस भाव के स्वामी ग्रह से आजीवन चलने वाले रोगों का विचार होता है |

आचार्य मन्त्रेश्वेर का मत है कि अष्टम स्थान में सूर्य आदि ग्रह हो तो निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है -

ग्रह	मृत्यु दायक रोग
सूर्य	अग्नि भय , विषम ज्वर , पित्त विकार
चन्द्र	हैजा , जलोदर टीवी	
मंगल	रक्त चाप , रक्त जानी व्याधि चोट, दूर घटना पीलिया रक्त की कमी तथा भ्रांति	
बुध	पांडू पीलिया , रक्त की कमी तथा भ्रान्ति कफज रोग	
गुरु	कफज रोग
शुक्र	मूत्र जन्य रोग , वीर्य जन्य रोग , गुप्त रोग	

शनि सन्निपात , लकवा एवं वायु रोग |

राहू कुष्ठ , विष रोग , सर्प एवं जहरीले जीव का काटना व चरम रोग |

केतू आकस्मिक दुर्घटना , कृमी रोग , कीट दंश एवं किसी जानवर से भय |

5.8.3 अष्टम स्थान को देखने वाले ग्रहों के मृत्यु दायक रोग

यदि अष्टम स्थान में कोई ग्रह न हो तो जो ग्रह अष्टम स्थान को देखता हो उसकी धातु के विकार से या पूर्वोक्त दाह आदि रोगों से मृत्यु होती है |

हड्डी , रक्त, मांस , मज्जा त्वचा , वीर्य, एवं स्नायु ये रोग सुर्यादी ग्रहों की धातु होती है |

ग्रह	धातु	रोग
सूर्य	अस्थि	अस्थि ज्वर , अस्थि स्राव , हड्डी में चोट ,
चन्द्र	रक्त	रक्त स्राव , रक्ता भाव , रक्त चाप ,एवं रक्त विमारियाँ
भौम	मज्जा	व्रण , स्फोट, विसर्प एवं मसूरिका	
बुध	तवचा	दाद , खाज, खुजली , गांठ ,फोड़ा, फुंसी एवं कुष्ठ
गुरु	वसा	सूखा स्थौल्य आदि	
शुक्र	वीर्य	वीर्य विकार , मधु मह , गुप्त रोग ,|
शनि एवं राहू	स्नायु	सन्निपात, पक्षा घात , एवं स्नायु विकार	

5.8.4.अष्टम स्थान की राशिवश मृत्यु दायक रोग

यदि अष्टम एवं तृतीय स्थान एवं तृतीय स्थान किसी भी ग्रह से दृष्ट या युत न हो तो अष्टम स्थान की राशि के अनुसार मृत्युदायक रोग का निर्णय करना चाहिए | आचार्य वराह मिहिर आदि आचार्यों का मत है कि अष्टम स्थान की राशि काल पुरुष के जिस

अंग का प्रतिनिधित्व करती हो मनुष्य के शरीर के उसी अंग में मृत्यु दायक रोग पैदा होता है | अष्टम स्थान में मेषादि राशियां होने पर निम्नलिखित रोगों से मृत्यु होती है -

राशियाँ	मृत्युदायक रोग
मेष	शिरो रोग , मानसिक रोग
वृष	नेत्र, कर्ण, नासिका, एवं मुख रोग
मिथुन	हस्त रोग , फेफड़े एवं स्वाश रोग
कर्क	हृदय रोग
सिंह	उदार रोग
कन्या	नाभि एवं गुर्दे के रोग
तुला	वस्ति एवं मूत्राशय के रोग
वृश्चिक	गुप्त रोग एवं वृषण के रोग
धनु	गठिया
मकर	जानुरोग
कुम्भ	जंघा क्षति रोग
मीन	श्लीपद एवं पोलियो

5.8.5 मृत्यु दायक रोग - जातक शास्त्र में कुछ प्रमुख मृत्यु प्रद स्थिति को बनाने वालेयोगों का विवेचन किया गया है, प्राय: सभी जातक ग्रन्थों में इनका उल्लेख मिलता है | जो इस प्रकार हैं -

1.जन्म कुण्डली में शनि - कर्क में तथा चन्द्रमा मकर में हो तो जलोदर से मृत्यु होती है | {ब्रिहत्जातक अ.२५ श्लो.३-७ }

2. दो पाप ग्रह के मध्य में स्थित चन्द्रमा कन्या राशि में हो तो रक्त विकार या शोष रोग से मृत्यु होती है |

3.द्वितीय स्थान में शनी , चतुर्थ में चन्द्रमा एवं दशम में मंगल हो तो शरीर में कीड़े पड़ने से मृत्यु होती है |

3. क्षीण चन्द्रमा पर बलवान मंगल की दृष्टी हो तथा अष्टम भाव में शनि हो तो गुदा रोग , क्रीमी रोग या दाह रोग से मृत्यु होती है |

4.अष्टम भाव में स्थित क्षीण चन्द्रमा को शनि देखता हो तो गुदा रोग नेत्र रोग या शतर के घाव से मृत्यु होती है |

5.लग्नेश चतुर्थेश एवं गुरु एक साथ हो तो अजीर्ण से मृत्यु होती है |

6. सूर्य के स्थान में बुध हो और उसे पाप ग्रह देखते हों तो ज्वर से मृत्यु होती है |

7. अष्टम स्थान में राहू हो तो चेचक रोग से या पित्त रोग से मृत्यु होती है |

8. लग्नेश, चतुर्थेश , द्वितीयेश एक साथ हो तो अजीरण से मृत्यु होती है |

9. अष्टम स्थान में सूर्य एवं शनि हो तो विभूति रोग से मृत्यु होती है |

10. चतुर्थ भाव में शनि मंगल हो तो शूल रोग से मृत्यु होती है |

5.8.6 रोगी की मृत्यु होगी की नहीं ?

रोगी की मृत्यु होगी की नहीं ? फलित शास्त्र के ग्रन्थों में इसे इस प्रकार का शास्त्रीय रीती से विचार किया गया है | रोगोत्पन्न होने के समय जो तिथि , नक्षत्र वार एवं ग्रह स्थिति होती है, उसके द्वारा रोगी के जीवन -मृत्यु का विचार किया जाता है | कुछ आचार्यों का मत है कि इस बारे में जब भी प्रश्न किया जाय , उस समय की कुंडली बनाकर वक्ष्यमाण योगों के अनुसार रोगी के जीवन - मरण का निश्चय कर लेना चाहिए |

1. आश्लेषा , आद्रा , ज्येष्ठा , शतभिषा , भरणी , तीनों पुर्वा , विशाखा धनिष्ठा एवं कृतिका इन ११ नक्षत्रों में सूर्य , मंगल या शनि वार में चतुर्थी , षष्ठी , नवमी द्वादशी या चतुर्दशी तिथि में रोग उत्पन्न हो तो रोगी की शीघ्र मृत्यु होती है |

2. ज्येष्ठा , स्वाती , आश्लेषा , आर्द्रा , पुरवा फाल्गुनी , पूर्वाषाढा एवं पूर्वा भाद्रपदा - इन नक्षत्रों में से किसी एक नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्यु प्रद होता है |

3. छिद्र तिथियों में पाप ग्रह { सूर्य, मंगल, एवं शनि } के वारों में; कृतिका धनिष्ठा , भरनी एवं शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्यु दायक होता है |

4. अष्टमी , पर्व { अमावस्या एवं पूर्णिमा } या रिक्ता तिथी में पाप ग्रह के वार में तथा त्रिजन्म नक्षत्र , विपत प्रत्यरी या वध नक्षत्र में चन्द्रमा होने पर उत्पन्न रोग मृत्यु दायक होता है |

5. प्रश्न लग्न में प्रिष्टोदय राशि हो , केन्द्र स्थान में पापग्रह हो तथा चन्द्रमा अष्टम में तो रोगी मर जाता है |

5.9 बोधात्मक प्रश्न

1. आयु .....प्रकार की होती है |

क. दो ,

ख. तीन

ग. चार

घ. छ:

2. रोगों की प्रवृति .....प्रकार की होती है |

1. आयु .....प्रकार की होती है |

क. दो ,

ख. तीन

ग. चार

घ. छ:

3. जन्म के समय चन्द्रमा छटवें या आठवें स्थान में हो तथा उस पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक कितने वर्ष में मृत्यु को प्राप्त करता है |

क. दो वर्ष ,

ख. तीन वर्ष

ग. चार वर्ष

घ. आठवें वर्ष

4. षष्ठ , सप्तम एवं अष्टम में शुभग्रह हों तथा तृतीय षष्ठ एवं एकादश स्थान में पाप ग्रह हों तो कोन सी आयु होती है |

क. दीर्घायु

ख. अल्पायु

ग. मध्यमायू

घ. पूर्णायु

5.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में हमने अध्ययन किया कि रोगों की साध्यता व असाध्यता के लिए सर्व प्रथम हमको जातक की आयु का निर्णय कर लेना चाहिए कि - आयु कितनी है मध्यायु है या पूर्णायु है कोई मृत्यु योग तो नहीं है , तदुपरांत रोग के लक्षण कारणों को ध्यान में रख कर रोग की साध्यता व् असाध्यता के विषय में विचार कर लेना चाहिए | इन सब बातों का हमने इस इकाई में क्रमबद्ध रूप से अध्ययन किया आशा है की आप सब अध्येता इस सिद्धांत से परिचित हो पाए होंगे |

5.11 बोधात्मक प्रश्नों के उत्तर

1. घ. छः

2. क. दो

3 . घ. आठवें वर्ष

5. क. दीर्घायु

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
2. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलालबनारसीदास,
3. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमारओझा, मोतीलालबनारसीदास

4. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
5. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
6. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

5 .12 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी
2. बृहत्पाराशर-होराशास्त्रम्, सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बाप्रकाशन, वाराणसी
3. ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार,डॉ.शुकदेव चतुर्वेदी, मोतीलालबनारसीदास
4. ज्योतिष और रोग, श्री कृष्ण कुमार, एल्फ़ा पब्लिकेशन रोशनपुर दिल्ली
5. जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
6. जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी
7. भुवनदीपक, डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
8. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी
9. वीरसिंहावलोकः, पं श्री रामकृष्ण पराशरः, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
10. रोगों का सम्भावित काल और उनकी सध्या असाध्यता { शोध लेखन प्रो. शुकदेव चतुर्वेदी श्री. ला. ब. शा. रा. संस्कृत विद्यापीठ नई दिल्ली }
11. दैवज्ञा भरण , वृहतपराशर होरा शास्त्र , जातक तत्व , फल दीपिका , वृद्ध यवन जातक , जातका भरण , प्रश्न मार्ग बृहत् जातक

5 .13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.आयु के प्रकार व आयु की समीक्षा कीजिए|

2. दीर्घायु योगों को सप्रमाण लिखिए|

3. साध्य रोगों के विषय में बताये|

4. असाध्य रोगों के योग व मृत्यु योगों का उल्लेख कीजिए|

इकाई- 6 रोगोत्पत्ति के ज्योतिषीय कारण

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 विषय परिचय
6.4 रोग परिज्ञान के उपकरण
6.5 रोग ज्ञान के उपकरण
6.5.1 स्थान से बननेवाले योग –
6.5.2 भाव से बनने वाले योग
6.7 .1 योग एवं उसके भेद
6.6.2 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग
6.6.3 स्थान , भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग
6.6.4 योगों के प्रमुख तीन तत्व
6.6.5 ग्रह
6.6.6 रोग विचार में ग्रहों का परिचय
6.6.7 ग्रहों की राशियाँ
6.6.8 ग्रहों की उच्च , नीच एवं मूल त्रिकोण राशि
6.6.9 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध
6.6.10 ग्रहों के बल
6.7 सारांश
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/ सहायक पाठ्यसामग्री
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना-

प्रस्तुत इकाई चिकित्सा ज्योतिष {**DMA-20** } में प्रमाण पत्र {**DIPLOMA**} पाठ्यक्रम के प्रथम प्रश्न पत्र ज्योतिषशास्त्र का परिचय नामक प्रथम खण्ड की षष्ट {छटवीं} इकाई से सम्बन्धित है जिसका शीर्षक **"रोग एवं रोगी परीक्षण के ज्योतिषीय उपकरण "**है इससे पूर्व की इकाई में आप ने ग्रह फल के विविध प्रविधियों के बारे में जाना, तथा संक्षिप्त रूप से ये भी जाना कि, कैसे ग्रहों का प्रभाव जीव -जगत पर पड़ता है | अब इसी क्रम में हम येजानेंगे, कि रोग एवं रोगी का परीक्षण ज्योतिष शास्त्र में कैसे किया जाता है | और इसके क्या – क्या ज्योतिषीय उपकरण होते हैं | इन सब विषयों को हम इस इकाई के अन्तर्गत सम्यक रूप से अध्ययन करेंगे | साथ ही इसके शास्त्रीय सैद्धांतिक पक्ष और प्रायोगिक पक्षों को भी समझने का प्रयत्न करेंगे |

6.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप –

- ❖ ज्योतिष शास्त्र के सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे |
- ❖ ज्योतिष में रोग व रोगी के परीक्षण के मुख्य आयामों से परिचित होंगे |
- ❖ साथ ही आयुर्वेद में रोग ज्ञान के मुख्य सूत्रों से भी अवगत होंगे।
- ❖ ये जानने का भी प्रयत्न करेंगे कि रोग कैसे उत्पन्न होते हैं |
- ❖ साथ ही विषय वस्तु के प्रायोगिक पक्ष से भी परिचित हो सकेंगे |

6.7 विषय परिचय –

हमारे शरीर एवं मन में उत्पन्न होने वाले विकार,जिनसे हमें किसी भी प्रकार का दुःख मिलता है , उसे रोग कहते हैं | इन रोगों की उत्पत्ति के कारण,लक्षण भेद एवं तदशमनोपाय {चिकित्सा }विधि तभी सही तरह से सफल हो पायेगा , जब रोग का परीक्षण सही तरह से करपायेंगे | आयुर्वेद में भी भगवान घनवनन्तरि ने आचार्य सुश्रुत से कहा , कि रोगी की चिकित्सा शुरू करने से पहिले वैद्य को रोगी की आयु का परीक्षण कर लेना चाहिए | क्यूंकि आयु के शेष होने पर ही चिकित्सा द्वारा वह ठीक हो सकता है | यदि आयु शेष हो तो रोग,ऋतु { मौसम } वय, बल एवं औषधि का विचार कर चिकित्सा करनी चाहिए | यही बात ज्योतिष शास्त्र में भी जोर दे कर कही गई है कि आयु का परीक्षण पहले भलीभांति कर लेना चाहिए |

आयु: पूर्वं परीक्षेत पश्चालक्षण मादिशेत | अनायुषाम् तु मर्त्यायानं लक्षनै किं प्रयोजनम् || सु.सं.सूत्रस्थान २५/४/१०

आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना | स्वस्थमुदिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्यम् ||[प्रश्न मार्ग ९/३-५]

6.8 रोग परिज्ञान के उपकरण –

जैसे कि पूर्व की इकाईयों में भी चर्चा हुई है ,कि अनुचित कर्म के फल स्वरुप रोग पैदा होते हैं , वे कर्म चाहे इस जन्म के हो या जन्म जन्मान्तरों के | इस जन्म के अनुचित कर्मों को आहार-एवं विहार की अनियमितता कह सकते हैं , जब कि जन्मान्तरों के अनुचित कर्मों को परम्परया अशुभ या पाप कर्म कहा जाता है | क्यूंकि जन्म-जन्मान्तरों से वर्तमान जीवन के आज और भविष्य तक के सभी कर्मों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है , जिसका विस्तृत अध्ययन आप ने पिछली इकाइयों में किया , फिर भी प्रसंग वश देखिये – संचित , प्रारब्ध, एवं क्रियमाण | तथा इन कर्मों के फल को जानने की ज्योतिष शास्त्र में तीन प्रविधियां अविष्कृत एवं विकसित की गयी है | अत: रोगों के परिज्ञान के मुख्यत: तीन उपकरण माने जाते हैं -१ योग २ दशा एवं ३ गोचर | होराशास्त्र की यह मुख्य विशेषता है, कि जन्म – जन्मान्तरों में अर्जित कर्मों का इस जन्म में कब – कब क्या-क्या और कैसा – कैसा फल मिलेगा ? इसको यह शास्त्र ठीक उसी प्रकार साफ-साफ बता देता है , जैसे दीपक अन्धकार में रखे हुए पदार्थ का ज्ञान होराशास्त्र में प्रति पादित , योग दशा एवं गोचर की विधी से किया जाता है | लघुजातक में भी कहा गया है – **यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुं तस्य कर्मण: पंक्तिम् | व्यन्जयती शास्त्रमेतत्तमसि द्रव्याणि दीप इव || लघुजातक अ.१/श.२**

6.9 रोग ज्ञान के उपकरण –

ग्रह योग- पूर्वार्जित कर्मों के प्रभाववश उत्पन्न होने वाले रोगों का परिज्ञान होराशास्त्र में प्रतिपादित ग्रह योगों के द्वारा किया जाता है | यथा – सूर्य आदि ग्रह मनुष्य के शरीर के अंग, धातु एवं दोषों का प्रतिनिधित्व करते हैं | जब ये ग्रह अनिष्ट स्थान एवं पाप प्रभाववश अनिष्टकारी हो जाते हैं तब वह शरीर के जिस अंग धातु या दोष का प्रतिनिधित्व करते हैं , उसमें विकार या रोग की सूचना

देते हैं | किन्तु जब वे ही ग्रह इष्ट स्थान एवं शुभ प्रभाववश शुभ हो जाते हैं , तब वे शरीर के उस अंग , धातु एवं दोष आदि के द्वारा आरोग्यता की सूचना देते हैं | इस प्रकार ग्रह योगों के माध्यम से यह शास्त्र विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगों का विचार करने कि सशक्त एवं समर्थ प्रविधि बताया है |

6.10 योग एवं उसके भेद –

ग्रह योगों को ज्योतिषीय भाषा में योग कहा जाता है | यह मनुष्य को पूर्वार्जित कर्मों के फल से मिलता है ,इसलिए योग कहलाता है | प्रश्न मार्ग में इसका उदाहरण इस प्रकार से मिलता है – **ग्रहाणां स्थिति भेदेन पुरुषान योजयन्ति हि | फले: कर्म समुदभूतेरीति योगा: प्रकीर्तितिता :||** [प्रश्न मार्ग अ.९ श्लो. ४८] वस्तुत: योग पूर्वार्जित कर्म को उसके फल से जोड़ने वाला सेतु है |यह योग ग्रहों की राशि एवं भाव में स्थित या परस्पर युति के द्वारा बनता है | ग्रह , राशि एवं भाव – इन तीनों तत्वों के द्वारा बनने वाले योग –आधार के भेद से सात प्रकार के होते हैं | प्रश्न मार्ग अ.६ श्लोक ४९-५० यथा – १.स्थान ,२- भाव,३-ग्रह,४- स्थान, एवं भाव, ५- स्थान एवं ग्रह , ६- भाव एवं ग्रह, ७- स्थान भाव एवं ग्रह |

6.10.1 **स्थान से बननेवाले योग** – मेष आदि द्वादश राशियों , उनके भेद – {चार,स्थिर,दिस्वभाव,,उच्च, नीच ,मूलत्रिकोण,स्वराशि ,एवं शत्रु राशि आदि | }और राशियों के वर्ग –{लग्न , होरा, द्रेस्काण , सप्तमांश , नवमांश,दशांश, द्वादशांश,त्रिंशंश, षष्ट्यअंश एवं पारिजातादि |} को ग्रहों का स्थान कहा जाता है | इनसे बनने वाले योगों को स्थान से बनाने वाले योग कहा जाता है , जैसे –

{अ.}मिथुन लगन में उत्पन्न व्यक्ति भोगी ,बन्धुरत , दयालु धनवान एवं रोगी होता है | {जातक पारिजात अ.९ श्लो.१०६ }

{आ }वृश्चिक के नवमांश में उत्पन्न व्यक्ति दु:खी दरिद्री दुर्बल .....एवं रोगी होता है |जा.पा.९/९७

6.10.2 **भाव से बनने वाले योग-** जन्म कुण्डली से प्रारम्भ कर १२ भाव होते हैं,जिनके नाम हैं – १-तनु २-धन ,३-सहज,४-सुख , ५- पुत्र, ६-रोग,७-जाया,८-मृत्यु,९-धर्म,१०-कर्म,११-आय एवं १२ व्यय | इन भावों में से कुछ को केन्द्र, त्रिकोण , पणफर ,

आपोक्लीम,त्रिक,त्रिषडाय, मारक,उपचय,एवं अनुपचयकहते हैं इनके द्वारा बनने वाले योगों को भाव से बनने वाला योग कहा जाता है , जैसे -

{अ.} चन्द्रमा से द्वितीय एवं द्वादश में कोई ग्रह न हो , तो कम द्रुम योग होता है | {वृ.जा.१३/६}

{ आ } लग्न पर चन्द्रमा की दृष्टि न हो , तो पिता के परोक्ष में जन्म होता है |{वृ.जा.५/१}

6.11 ग्रहों से बनने वाले योग –

होरा शास्त्र ने शुभ एवं अशुभ फल के सूचक नौ ग्रह माने गए हैं| इन ग्रहों की युति से बनने वाले योगों को ग्रह योग कहा जाता है , जैसे

{अ.} जिसके जन्म के समय चन्द्रमा पूर्णबली तथा पूर्ण कला वाला हो वह राजा बनता है |{जातक पारिजात ७/३८ }

{आ.}केन्द्रेश एवं त्रिकोणेश आपसी सम्बन्ध से राजयोग कारक होते हैं | {लघु पारशरी १४-१५}

6.6 .1 स्थान एवं भाव से बनने वाले योग –जातक ग्रंथों में स्थान एवं भाव से बनने वाले योग पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं |इन योगों में स्थान एवं भावों का दोनों का समान रूप से महत्व होता है , जैसे-

{अ.}सप्तम स्थान में द्विस्वभाव राशि हो , तो शात्रों द्वारा किये गए अभिचार { तन्त्र क्रिया } से रोग होता है | जा.पा.६/७७

{आ.}दुसरा उदाहरण देखें – मेष लग्न में उत्पन्न – व्यक्ति बन्धु –द्वेषी, दुर्बल –शरीर ,क्रोधी , मानी , पराक्रमी एवं दुर्बल जानु होता है |जा.पा.९/१०५

6.6.2 **भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग** – भाव में ग्रहों की स्थिति या भाव पर ग्रहों की दृष्टि द्वारा बनने वाले योगों को – भाव एवं ग्रहों से बनने वाले योग कहा जाता है | इन योगों में भाव एवं ग्रह इन दोनों का सामान महत्व होता है | **उदाहरण** –

{अ.} लग्न में मंगल हो और षष्ठेश दुर्वल हो , तो जातक को अजीर्ण गुल्म एवं शूल रोग होता है |

{आ} पापग्रह एवं राहू के साथ चन्द्रमा ५,८ या १२ वें भाव मे हो ,तो जातक पागल एवं क्रोधी कलह प्रिय होता है | {जा.पा. ६/८३ }

6.6.3 स्थान , भाव एवं ग्रह से बनने वाले योग – ज्योतिष शास्त्र के होरा ग्रंथों में स्थान , भाव एवं ग्रह इन तीनों का सामान रूप से महत्व होता है | और ये तीनों मिलकर विशेष प्रकार के फल की सूचना देते हैं | { अ.} कर्क लग्न में चंद्रमा एवं गुरु हो , केन्द्र में बुध एवं शुक्र हो तथा शेष ग्रह त्रिषडाय में हो –तो जातक की अमित आयु होती है | {सारावली अ. १०/ ७४ }

6.6.4 योगों के प्रमुख तीन तत्व – जीवन के घटनाचक्र , जिसका एक पहलू स्वास्थ्य एवं रोग भी है , इसका विचार विचार करने का मुख्य उपकरण योग है | जातक ग्रंथों में प्रतिपादित योगों में प्रमुख रूप से तीन तत्व प्रमुख होते हैं – १-ग्रह, २- राशि, एवं ३- भाव |

ज्योतिषशास्त्र के होरा ग्रंथों में ग्रहशील का निरूपण करते समय ग्रहों की राशि उनकी नैसर्गिक एवं तात्कालिक मैत्री ,उनकी दृष्टि , उनके षड्बल उनका शुभाशुभ , उनकी षड् अवस्थावों एवं उनके चतुर्विध सम्बन्ध आदि का विस्तृत एवं सोदाहरण विवेचन किया गया है | इन सबकी जानकारी होरा ग्रंथों से कर लेनी चाहिए | जो उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं , वो होरा ग्रंथों से लिए गये हैं | किसी भी योग चाहे वो भाव से बनने वाला हो या स्थान से उसकी पुष्टता, ग्रहों के या भाव के बलाबल से अवश्य कर लेनी चाहिए फलकथन से पूर्व कि क्या वह योग प्रबल है ,कि नहीं |

उपरोक्त उपकरण ही प्रमुख हैं रोग व रोगी के परीक्षण हेतु इन उपकरणों के आधार पर हम रोग विषयक तत्वों का पता लगा सकते हैं, कि किसी जातक का कोन सा योग है जो कि रोग उत्पन्न कर सकता है ? कोई भी शुभाशुभ योग अपनी भुक्ति {दशा -अन्तर -दशा } में ही फल देता है |

ज्योतिष शास्त्र में रोग का विचार करने किलिये जितने योग बताए गए हैं , उनमें तीन तत्व प्रधान हैं -१- ग्रह , २- राशि, ३- भाव | अत: ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से रोगों का विस्तार से विवेचन करने के पूर्व उक्त ग्रह , राशि एवं भाव का विचार अवश्य कर लेना परमआवश्यक है |

6.6.5 ग्रह - ज्योतिष शास्त्र में शुभ एवं अशुभ फल के सूचक कुल नव {९} ग्रह माने गए हैं ,जैसे – १-सूर्य,२-चन्द्र,३-भौम,४-बुध,५-गुरु, ६-शुक्र ,७- शनि ,८-राहू , ९- केतू | उक्त ग्रहों में राहू तथा केतू – ये दोनों छाया ग्रह हैं | अन्य ग्रहों की भान्ति सौरमंडल में इनका

ज्योतिषपिण्ड { चमकीला बिम्ब } दिखाई नहीं देता | शेष अन्य सात ग्रहों के ज्योतिष पिण्ड सौर मण्डल में अपनी – अपनी कक्षाओं में घूमते हुए दिखाई देते हैं | यद्यपि ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्त ग्रंथों में राहू – केतू को गढ़ नहीं माना गया है तथापि शास्त्र में इनके महत्व को स्वीकार कर इन्हें ग्रहों के साथ सम्मलित किया गया है |

आधुनिक काल में पाश्चात्य ज्योतिर्विदों ने सौरमंडल में हर्शल , नेपच्यून एवं प्लेटो नामक तीन अन्य ग्रहों की खोज की है | पाश्चात्य ज्योतिष ग्रंथों में इन ग्रहों के प्रभाव का भी उल्लेख नहीं है | अत: इस पाठ्यक्रम में केवल नव ग्रहों के आधार पर ही रोग का विचार किया गया है |

6.6.6 रोग विचार में ग्रहों का परिचय कोन सा ग्रह किस तत्व का प्रतिनिधित्व कर्ता है ? उसका कद एवं रंग कैसा है ? वह शरीर के किं-किं अंगों को प्रभावित कर्ता है ? और वह किन- किन रोगों को उत्पन्न कर सकता है ? इन बातों का विचार ज्यतिष ग्रंथों में विस्तार पूर्वक किया गया है | फलदीपिका मोतीलाल वनारसी दास ,दिल्ली अ.१४/श्लोक ७५-८१

सूर्य –यह अग्नि तत्व तथा माध्यम कद वाला शुष्क ग्रह है | यह मनुष्यों के {पुरुषों के दायें तथा स्त्रियों के बांयें } नेत्र, आयु , अस्थि, शीर्ष ,हृदय , प्राण शक्ति, मेदा ,रक्त तथा पित्त को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर हड्डियां मजबूत होती है तथा शरीर स्वस्थ बना रहता है | और इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने पर क्षय , पित्त प्रकोप नेत्र रोग, अस्थि रोग , शिरोरोग , हृदय रोग , उषण वात , ज्वर, मूर्छा , चर्मरोग , मृगी एवं शूल रोग होता है |

चन्द्र – यह जल तत्व तथा दीर्घ कद वाला जलीय ग्रह है | यह मनुष्यों के { पुरुषों के बांयें तथा स्त्रियों के दांयें} नेत्र, स्तन ,वक्ष,फेफड़ा, मन, मष्तिष्क , उदार , मूत्राशय , रक्त , रस-धातु शारीरिक पुष्टि एवं कफ को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर शरीर में रक्त संचार ठीक बना रहता है , आरोगवृद्धि होती है तथा मनोबल उन्नत रहता है | इसके निर्बल अशुभ या रोग कारक होने पर कफ रोग , मूत्र विकार , जलोदर , मुख रोग , नासिका रोग , पाण्डु रोग , क्षय रोग मन्दाग्नि , अतिसार , स्त्रीसंसर्ग जानी रोग , प्रदर रोग अपस्मार , वात एवं मानसिक रोग

भौम- यह अग्नि तत्व तथा सामान्य कद्वाला शुष्क ग्रह है | यह शरीर के कपाल , कान , स्नायु, जननेंद्रिय , मज्जा,पुठों की पुष्टता , शारीरिक पुष्टता , डाह , शोथ , धैर्य एवं पित्त को प्रभावित कर्ता है |इसके बली होने पर व्यक्ति के शरीर में हड्डियां मजबूत होती है | यह निर्बल , अशुभ या रोग कारक हो तो रक्त विकार , रक्तचाप , फोड़ा-फुंसी खाज सूजन , चोट , रक्तस्वाव कुष्ठ, अग्निदाह , महामारी , गुप्त रोग , शल्य क्रिया आदि होते हैं |

बुध- यह पृथ्वी तत्व तथा सामान्य कद वाला जलीय ग्रह है | शरीर में यह जिह्वा , वानी , स्वर चक्र , स्वास्नली, अगल मस्तिष्क , केश , मुख, हाथ, एवं त्रिधातु को प्रभावित कर्ता है | इसके बलवान होने पर बालक का मष्तिष्क पूर्ण विकसित होता है , उसका व्यक्तित्व आकेश्क , तथा प्रतिपादन शैली मोहक होती है | इसके निर्बल या रोग कारक होने पर मूर्छा , हिस्टीरिया , मानसिक रोग चक्कर आना , न्यूमोनिया, विषमज्वर , त्रिदोष ज्वर , इत्यादि रोग होते हैं |

गुरु – यह आकाश तत्व { मतान्तर से वायु तत्व } तथा मध्यम कद {मतान्तर से ह्रस्व कद } वाला जलीय ग्रह है | शरीर में चर्वी, वीर्य , उदार, यकृत, रक्त – धमनी , त्रिदोष तथा कफ को प्रभावित कर्ता है | इसके बली होने पर शरीर पुष्ट , होता है, विचार शक्ति अच्छी होती है, तथा मन में शांति होती है | इसके निर्बल होने पर या अशुभ या रोग कारक होने पर उदर विकार , मज्जा दोष, यकृत दोष, प्लीहा , स्थूलता , दंतरोग, वायु विकार , मूर्छा , मष्तिष्क विकार , ज्वर, कर्ण रोग , ऊँचाई से गिरना एवं मानसिक तनाव इत्यादि होता है |

शुक्र – यह जलतत्व तथा मध्यम कद वाला जलीय ग्रह है | शरीर में यह जननेंद्रिय , शुक्राणु , नेत्र, कपोल, चिबुक, स्वर , रस , गर्भाशय एवं संवेग शक्ति को प्रभावित करता है | इसके बली होने पर शरीर शुडोल एवं सुन्दर होता है , मनुष्य की काम शक्ति बलवान होती है तथा वीर्य पुष्ट होता है |इसके निर्बल होने पर या रोग कारक स्थिति में मूत्र जन्य रोग , वीर्य विकार , गुप्त रोग स्त्री संसर्ग जानी रोग , मादक द्रव्यों के सेवन से उत्पन्न विकार , विष जानी विकार , प्रमेह, मधु मह प्रदर , काफवायु , पाण्डु रोग होता है

शनि – यह वायु तत्व तथा मध्यम कद वाला ग्रह है | यह शरीर में हड्डियां की जोड़ , पैर ,घुटने ,वात,संस्थान , स्नायु संस्थान ,मज्जा तथा बात को प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर स्नायुमंडल पुष्ट तथा शरीर सुदृढ़ होता है | इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने

पर वायु विकार स्नायु विकार , जोड़ो का दर्द , गठिया , सन्धिवात, पक्षाघात , पागलपन,डाढ में दर्द ,अपचन , खांसी , दमा , अंग – भंग तथा निराशा जंक मानसिक रोग होते हैं |

राहू – यह वात तत्व एवं मध्यम कद वाला ग्रह है | यह शरीर में मष्तिष्क , रक्त, त्वचा , एवं वात को प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर शरीर में फुर्ती , ताजगी , एवं चैतन्यता बनीं रहती है | तथा इसके निर्बल , अशुभ या रोग कारक होने पर चेचक , कृमि मृगी , सर्प दंश , पशुओं से चोट , कुष्ठ , एवं केंसर,जैसे असाध्यरोग हो जाते हैं |

केतू – यह वायु तत्व तथा छोटे कद वाला ग्रह है | यह शरीर में वात रक्त तथा चर्म को विशेष रूप से प्रभावित करता है | इसके बलवान होने पर शरीर में श्रम शक्ति ,संघर्ष शक्ति , प्रतिरोध शक्ति एवं सक्रियता बनी रहती है | तथा इसके निर्बल होने पर शरीर में सुस्ती , अकर्मण्यता , शरीर में चोट , घाव , चर्म रोग , जटिल रोग एवं एलर्जी हो जाती है |{प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी . विद्यापीठ }

6.6.7 ग्रहों की राशियाँ – ज्योतिष शास्त्र में सूर्य आदि सात ग्रहों को मेष आदि द्वादश राशियों का स्वामी माना गया है | जैसे- सिंह राशि का स्वामी सूर्य,कर्क का चन्द्रमा, मेष तथा वृश्चिक का मंगल , मिथुन एवं कन्या का बुध , धनु तथा मीन का गुरु , वृष तथा तुला का शुक्र और मकर तथा कुम्भ राशि का स्वामी शनि होते है | परन्तु परवर्ती कुछ आचार्यों ने राहू को कन्या राशि तथा केतू को मीन राशि का स्वामी मना जाता है |

6.6.8 ग्रहों की उच्च , नीच एवं मूल त्रिकोण राशि – सूर्यादि ग्रहों की उच्च राशियाँ – मेष,वृष,मकर,,कन्या,कर्क,मीन,तुला,मिथुन,एवं धनु मानी गई है | इन ग्रहों की नीच राशियों में भी परमोच तथा परम नीच के अंश इस प्रकार हैं –सूर्य का परमोच्च मेष के १० अंश पर,चन्द्रमा का वृष के ३ अंश पर मंगल का मकर के २८ अंश पर , बुध का कन्या के १५ अंश पर ,गुरु का कर्क के ५ अंश पर शुक्र का मीन के २७ अंश पर, शनि का तुला के २० अंश पर , राहू का धनु के १५ अंश पर तथा केतू मिथुन के १५ अंश पर परम नीच होता है |किन ग्रहों को किन राशियों के , कितने अंश पर मुलत्रिकोण माना गया है ?-

आईये समझते हैं –

ग्रह	**मूलत्रिकोण राशि एवं अंश**
सूर्य -	सिंह राशि में १ से २० अंश तक

चन्द्र - वृष राशि में ४ से ३० अंश तक

मंगल – मेष राशि में १ से १२ अंश तक

बुध – कन्या राशि १६ से २५ अंश तक

गुरु – धनु रशी में १ से २० अंश तक

शुक्र – तुला राशि में १ से २० अंश तक

शनि - कुम्भ राशि में १ से २० अंश तक

पूर्वाचार्यों ने राहू एवं केतू को छायाग्रह मानकर उनकी मूल त्रिकोण राशि या स्वराशि नहीं मानी है | किन्तु परवर्ती आचार्यों ने कुम्भ राशि में राहू का मूल त्रिकोण माना है |{ जातक पारिजात अ.१ श्लोक२८ }

6.6.9 ग्रहों का पारस्पारिक सम्बन्ध –

ग्रहों का पारस्परिक सम्बन्ध दो प्रकार का मना गया है – {१} नैसर्गिक सम्बन्ध {२} तात्कालिक सम्बन्ध |वृहत्जातक २/१७-१८

नैसर्गिक दृष्टि से ये निकटता एवं दूसरी के आधार पर मित्र एवं शत्रु माने जाते हैं | नैसर्गिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता , शत्रुता एव उदासीनता इस प्रकार से हैं –

सूर्य- इसके चन्द्रमा , मंगल एवं गुरु मित्र हैं | शुक्र एवं शनि शत्रु हैं | तथा बुध सम हैं |

चन्द्र – इसके सूर्य तथा बुध मित्र हैं | राहू शत्रु है और मंगल , गुरु,शुक्र,शनि,सम है |

भौम- सूर्य,चन्द्र,गुरु,मित्र हैं , बुध एवं राहू मित्र हैं | शुक्र एवं शनि सम हैं |

बुध- इसके सूर्य, शुक्र मित्र है , चन्द्रमा शत्रु हैं | तथा मंगल , गुरु,शनि सम है |

गुरु- सूर्य,चन्द्र,एवं मंगल मित्र हैं | बुध एवं शुक्र शत्रु हैं | तथा गुरु सम है |

शुक्र- बुध, शनि मित्र हैं | सूर्य एवं चन्द्र शत्रु हैं | मंगल एवं गुरु सम |

शनि – बुध एवं शुक्र मित्र हैं | सूर्य चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं | गुरु सम है |

राहू – इसके बुध , शुक्र, मित्र हैं सूर्य,चन्द्र, मंगल,शत्रु हैं | तथा गुरु सम है |

केतू- इसके बुध ,शुक्र, शनि मित्र हैं | सूर्य, चन्द्र एवं मंगल शत्रु हैं |

तत्कालिक दृष्टि से ग्रहों की मित्रता एवं शत्रुता का ज्ञान , उनकी निकटता एवं दूरी के आधार पर मानी जाती है | किसी भी ग्रह से २/३/४/१०/११ एवं १२ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर मित्र होते हैं तथा | १/५/६/७/८ एवं ९ वें स्थान में रहने वाले ग्रह परस्पर शत्रु होते हैं ; एक राशि में साथ-साथ रहने पर ग्रहों में युद्ध भी होता है | { सूर्य सिद्धांत ग्रह्युत्याधिकार श्लोक १,२०-२३} अत: एक राशि में रहने वाले ग्रह,अत्यन्त निकट होने पर भी परस्पर शत्रु होते हैं |

नैसर्गिक एवं तात्कालिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों की आपसी सम्बन्धों के आधार पर ग्रहों का आपसी सम्बन्ध ५ प्रकार का हो जाता है – १- अति मित्र , २- मित्र , ३- सम, ४-शत्रु ,एवं ५- अति शत्रु जो ग्रह नैर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में स एक में मित्र तथा अन्य में सम होते हैं , आपस में मित्र कहे जाते हैं | जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं , आपस में सम कहलाते हैं | जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से मित्र तथा दूसरी दृष्टि से शत्रु होते हैं , आपस में सम कहलाते हैं |जो ग्रह नैसर्गिक तथा तात्कालिक दृष्टियों में से एक दृष्टि से शत्रु था दूसरी दृष्टि से सम होतें हैं , परस्पर शत्रु माने जाते हैं | और जो ग्रह नैसर्गिक एवं तात्कालिक दृष्टियों से आपस में शत्रु होते हैं , वे परस्पर अतिशत्रु कहलाते हैं |

महर्षि पराशर ने ग्रहों की नैसर्गिक एवं तात्कालिक मित्रता-शत्रुता के अलावा उनकी युति-दृष्टि आदि के आधार पर अन्य चार प्रकार के सम्बन्ध माने हैं ; जो इस प्रकार हैं – {१} युति सम्बन्ध {२}दृष्टि सम्बन्ध, {३}स्थान सम्बन्ध एवं {४} एकांतर सम्बन्ध | एक राशि एवं एक ही भाव में साथ-साथ बैठने वाले ग्रहों में युति सम्बन्ध होता है आपस में एक दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है | तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठने वाले ग्रहों में स्थान सम्बन्ध होता है | तथा जब एक ग्रह दूसरे की राशि में बैठा हो और दूसरे सम्बन्ध होता उसे देखता हो तो उनमें एकांतर सम्बन्ध होता है | इन चार प्रकार के सम्बन्धों को सम्बन्ध चतुष्टय कहते हैं | ये चार प्रकार के सम्बन्ध ग्रहों में सहयोग या पूरक भाव के सूचक होते हैं | तथा इन संबंधों के प्रभाव वश दोषयुक्त या निर्बल ग्रह भी बलवान होकर कारक या मारक बन जाते हैं | {लघुपाराशरी अ.२ श्लोक १}

ग्रहों की दृष्टि –ग्रहों की दृष्टि दो प्रकार की होती है १- साधारण दृष्टि या पाद दृष्टि तथा २- विशेष दृष्टि | प्रत्येक ग्रह जिस स्थान पर बैठा हो , उससे तीसरे तथा १०वेन स्थान को एक पाद दृष्टि से ;५वेन तथा ९ वें स्थान को द्विपाद दृष्टि से देखता है |{लघु पाराशरी २/ १} इस प्रकार ग्रह जिस स्थान में बैठा हो , उससे १/२/६/११ एवं १२ वें स्थान को छोड़कर शेष स्थानों पर उसकी साधारणतया दृष्टि रहती है | किनती सप्तम स्थान पर प्रत्येक ग्रह की पूरण दृष्टि रहती है | सूर्यादि ग्रहों में से मंगल , गुरु, एवं शनि – ये तीन इस प्रकार के हैं , जो सप्तम के अलावा अन्य स्थानों को भी पूर्ण दृष्टि से देखते हैं , यथा मंगल,७ वें स्थान के साथ – साथ चुठे स्थान एवं आठवें स्थान को भी पूर्ण दृष्टि से देखता है |इसके अलावा गुरु ५वें और ९ वें स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है तथा शनि सप्तम के साथ – साथ तृतीय और दशम स्थान को पूर्ण दृष्टि से देखता है | ग्रहों की साधारण प्रभाव वश तथा पूर्ण दृष्टि का प्रभाव होता है |

6.6.10 ग्रहों के बल – ग्रहों के बल छ: प्रकार के माने गये हैं – १- स्थान बल , २- दिग बल , ३- काल बल ४- चेष्टा बल , ५- दृग बल , ६- नैसर्गिक बल | { जातक पारिजात २/३८ }

{१} स्थान बल –जो ग्रह अपनी राशि , उच्च राशि या मूल त्रिकोण राशि में हो वह स्थान बलि कहलाता है | अपने नवमांश , द्रेष्काण , या पारिजातादि वैशेषिक वर्ग में स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है | अष्टक वर्ग मं जिस राशि पर ४ से अधिक रेखाएं हो , वाहन स्थित ग्रह भी स्थान बली कहलाता है | इस प्रकार हम देखते हैं कि कतिपय राशि या स्थान पर ग्रह के स्थित हो जाने पर उसे बल मिलता है | इस प्रकार के बल को स्थान बल कहते हैं |

{२}दिग बल – दिशा में स्थित होने वाले प्राप्त बल को दिग बल कहते हैं | जन्म कुंडली में लग्न पूर्व को , दशम दक्षिण को , सप्तम पश्चिम को, तथा चुर्थ भाव उत्तर को सूचित करता है | इसी प्रकार बुध गुरु पूर्व में , सूर्य,मंगल दक्षिण में , शनि पश्चिम में , चन्द्रमा शुक्र उत्तर में बली होते हैं | लग्न में बुध गुरु , दशम में सूर्य मंगल, सप्तम में शनि , तथा चतुर्थ में चन्द्रमा एवं शुक्र दिगबल के कारण बलवान कहलाते हैं |

{३}काल बल – समयानुसार प्राप्त होने वाला बल काल बल कहलाता है | जैसे – चन्द्रमा , मंगल, शनि, रात्रि में बली कहलाते हैं सूर्य,गुरु,शुक्र दिन में , तथा बुध दिन रात दोनों में बली होता है | सभी ग्रह अपने –अपने काल, होरा में अपने वर्ष में { जिसमें वर्षेश हो }, अपने मास में तथा

अपने दिन में बली होते हैं | इसके इतर शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में तथा पाप ग्रह कृष्ण पक्ष में बली होते हैं |

{४} चेष्टा बल – सूर्य,चन्द्र उत्तरायण में {मकर से मिथुन तक छ: राशियों } में बलवान होते हैं | मंगल, बुध,गुरु,शुक्र,शनि- ये यदि ग्रह युद्ध में विजयी हो , वक्र गति हो या चन्द्रमा के स्थ हो तो चेष्टा बली कहलाते हैं |

{५} दृग्बल- दृष्टि के प्रभाव वश प्राप्त होने वाले बल को दृग्बल कहते हीं | जिन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो वे दृग्बल कहलाते हीं | और जिन पर पाप ग्रहों की दृष्टि हो वे निर्बल कहलते हैं |

{ ६} नैसर्गिक बल - ग्रहों के स्वाभाविक बल को नैसर्गिक बल कहते हैं | इस दृष्टि में सूर्य सर्वाधिक बली होता है | शनि से मंगल , मंगल से बुध , बुध से गुरु, गुरु से शुक्र , शुक्र से चन्द्रमा और चन्द्र से सूर्य निसर्गत: बली होता है |

ग्रहों का शुभाशुभत्व –सामान्यतया ग्रह दो प्रकार के होते हैं -१- शुभ, तथा २-पाप | जो ग्रह मनोनुकूल फल देते हैं , वे शुभ तथा जो मन के प्रति कूल फल देते हैं वे पाप ग्रह कहलाते हैं |

शुभ ग्रह- गुरु एवं शुक्र – ये दोनों पूर्ण शुभ ग्रह हैं \ पूर्ण चन्द्रमा तथा शुभ ग्रह से युक्त बुध भी शुभ माना जाता है | इस प्रकार अधिकतम ४ ग्रह शुभ माने गये हैं -१-गुरु,२-शुक्र,३- पूर्ण चन्द्रमा एवं ४- शुभ ग्रह युक्त बुध |

चन्द्रमा का शुभा शुभत्व –शुक्लपक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा पूर्ण रहता है | इस पूर्ण चन्द्र को शुभ ग्रह माना जाता है , तथा कृष्ण पक्ष की एकादशी से लेकर शुक्ल पक्ष की पंचमी तक चन्द्रमा क्षीण माना जाता है | क्षीण चन्द्र को पाप ग्रह माना जाता है | शेष दिनों में चन्द्र मध्यम होता है , यह मध्यम चन्द्रमा शुभ एवं अशुभ दोनों फल देता है |

पाप ग्रह – सूर्य, मंगल, शनि,राहू,एवं केतू – ये पाँच ग्रह पाप ग्रह कहलाते हैं | इसके अलावा क्षीण चन्द्र तथा पाप ग्रहों से युत बुध भी पाप ग्रह कहलाता है | पाप ग्रहों की संख्या सात हो जाती है – सूर्य , मंगल, शनि, राहू , केतू क्षीण चन्द्र, पाप युक्त बुध | इन पाप ग्रहों में से सूर्य और मंगल को क्रूर ग्रह भी कहते हैं |

ग्रहों की अवस्था – महर्षि पाराशर ने ग्रहों की फल देने की क्षमता का मूल्यांकन करने के लिए उनकी अवस्थायें मानी हैं- १- बाल्यावस्था ,२- कुमार अवस्था ,३- युवा अवस्था , ४- वृद्धा

अवस्था ,५- मृता अवस्था | विषम राशियों में १ से ६ अंश तक स्थित ग्रहों की वाल्या अवस्था होती है , ७ से १२ अंश तक स्थित ग्रह कुमार अवस्था , १३ से १८ अंश तक स्थित ग्रह की युवावस्था ,ण १९ से २४ अंश तक स्थित वृद्धा अवस्था तथा २५ से ३० अंश तक स्थित ग्रह की मृतावस्था होती है | सम राशियाँ में इसके विपरीत १-६ अंश तक मृतावस्था ,७-१२ अंश तक वृद्धावस्था , १३-१८ अंश युवावस्था , १९-२४ अंश तक कुमारावस्था , २५-३० बाल्यावस्था होती हि |{ वृहत् पराशर होरा शास्त्र ग्रह अवस्थाध्याय }

बाल्यावस्था का ग्रह कुछ फल देता है | कुमारावस्था का ग्रह आधा फल तथा युवावस्था का ग्रह पूर्ण फल देता है | वृद्धावस्था का ग्रह दुष्ट फल एवं मृतावस्था का अनिष्ट कारक माना गया है –

फलं तु किन्चिद्वितनोति बालास्चार्द्ध कुमारो यतते च पुंसाम् |

युवा समग्रं खचारोऽथ वृद्धः फलं च दुष्टं मरणम् मृताख्यः|| वृ. पा. हो.शा. }

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वाल, कुमा, युवा, अवस्थावों में ग्रह के मौलिक प्रभाव {फल} में उतरोत्तर वृद्धि होती है | वृद्धावस्था में उसका प्रभाव घटता है और मृतावस्था में वह प्रभाव हीन हो जाता है |

6.7 अभ्यास प्रश्न

1. रोग परिज्ञान के कितने उपकरण हैं

2. भाव कितने होते हैं

3. राशियाँ कितनी होती है

4.गोचर कितने प्रकार का होता है

6.12 सारांश –

प्रस्तुत इकाई में आपने पढ़ा कि कोन -कोन से रोग ज्ञान के ज्योतिषीय उपकरण हैं साथ ही ये भी जाना कि ; ग्रह कब रोग कारक होता है | तथा साथ ही ग्रहों के बलाऽबल के सम्बन्ध में भी जाना कि ग्रह किन-किन स्थितियों में बलवान और निर्बल होंगे ,और बलवान ग्रह कैसा फल देगा,निर्बल ग्रह कैसे फल देगा | आशा है कि इस इकाई के अध्ययन के पश्चाद आप रोग-परिज्ञान के सिद्धांतों को भलीभांति समझकर रोगों का निर्णय व परिज्ञान कर पायेंगे |

6.8.1 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. 3

2. 12

3. 12

4. 2

6.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची/सहायक पाठ्यसामग्री

16. वेदों में विज्ञान, डॉ.कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर उ.प्र., प्रथम संस्करण 2000
17. बृहज्जातक, उत्पलटीका, मोतीलाल बनारसीदास,1999
18. फलदीपिका, पं.गोपेशकुमार ओझा, मोतीलाल बनारसीदास, प्रथम संस्करण,1946
19. लघुजातक, भट्टोत्पल-भारती टीका, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी
20. भावप्रकाश, दैवज्ञश्रीजीवनाथझा, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

5,9.1 सहायक पाठ्य सामग्री

1. अमरकोषः, अमरसिहं, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी 2003

2.बृहत्पाराशरहोराशास्त्रम्,सं. पं. देव चन्द्र झा, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी

3.जातकालंकार, सं.डॉ. सत्येनद्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

4.जातकपारिजात, श्रीवैद्यनाथविरचित, चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणासी

5. भुवनदीपक,डॉ. सत्येन्द्रमिश्र, चौखम्बा सुरभरती प्रकाशन, वाराणसी

6.मेडिकल एस्ट्रोलोजी मूल संकल्पना एवं सिद्धांत {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

7 .चरक संहिता सूत्र स्थान / सुश्रुत संहिता

8. प्रश्नमार्ग / माधव निदान

9.गदावाली / ज्योतिष शास्त्र में रोग विचार {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी }

10.ज्योतिष तत्व /

11.भारतीय ज्योतिष { नेमि चन्द्र शास्त्री }

12.मन्त्र साधना द्वारा ग्रह चिकित्सा {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

13. ज्योतिष एवं रोग {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

14..रोगों का सम्भावित काल {प्रो.शुकदेव चतुर्वेदी}

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1- रोग ज्ञान की प्राविधि क्या है सविस्तार पूर्वक वर्णन करें |

2- हरों का बलाबल क्या है |

3- ग्रहों की अवस्था कितनी होती है उनका फल सहित उल्लेख कीजिए |

4- योग क्या है व कितने प्रकार का होता है |

खण्ड -03

आयुर्वेदीय दृष्टि से रोग परिचय

इकाई-3 कारण रोग

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 कारण रोग

3.1 रोगों के मुख्य कारण

3.2 आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग विचार

3.3 रोगों के प्रमुख सिद्धान्त

3.4 रोगोत्पत्ति का समयादि परिज्ञान

3.5 सारांश

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

चिकित्सा ज्योतिष में डिप्लोमा, प्रथम प्रश्न पत्र चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड की तृतीय इकाई है। इसके पूर्व की इकाईयों में आपने आयुर्वेदीय दृष्टि में रोग, आयुर्वेदाचार्यों के मत, चिकित्सा के भेद से सम्बन्धित तथ्यों का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई में कारण रोग पर प्रकाश डाला गया है।

मानवमन में उत्पन्न होने वाले समस्त भाव विकार व उनसे होने वाले कष्ट एवं अनुभूति को ही रोग कहते हैं। इन रोगों की उत्पत्ति के क्या कारण हैं, उनके लक्षण, भेद, एवं चिकित्सा विधि में ज्योतिष और आयुर्वेद में कितनी समानता है ? इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकेंगे साथ ही इन सब विषयों पर हम विस्तार से विश्लेषण कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन करने के उपरान्त आप—

- रोग किसे कहते हैं, यह जान सकेंगे।
- रोगों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण क्या है, इस विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- आयुर्वेद एवं ज्योतिष का क्या सम्बन्ध है, इस विषय पर दृष्टिपात कर सकेंगे।
- रोगों के प्रमुख सिद्धान्तों के बारे में जान सकेंगे।
- रोगों के की उत्पत्ति का समय एवं उपचार के सम्बन्ध जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3.3 कारण रोग

3.1 रोगों के मुख्य कारण

'कर्मजाव्याधय: केचिद् दोषजा: सन्ति चापरे'— आयुर्वेद के मतानुसार कर्म एवं दोषप्रकोप को रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है। प्रायः अव्यवस्थित आहार एवं विहार से रोगों का जन्म होता है। भारतीय संस्कृति में ऋतुओं का बड़ा महत्व है। आयुर्वेद एवं ऋतु का भी अपने आप में विशेष महत्व है। मनुष्य जब ऋतु के अनुरूप अपनी दिनचर्या को करता है, तो रोगजन्य कष्ट की सम्भावना न्यून हो जाती है। फिर भी यदि रोग हो जाए तो उस रोग को कर्म जन्य रोग माना जाता है।

आयुर्वेदशास्त्र में जो कर्म जन्य रोगों के कारण कर्म माना गया है। वह संचित कर्म ही है जो व्यक्ति का प्रारब्ध भी है। तथा गलत आहार-विहार आदि क्रियमाण कर्म है। इसी

कारण ज्योतिषशास्त्र के आचार्यों ने मनुष्य के पूर्व अर्जित कर्म तथा जन्मान्तर में विहित पाप को रोग का कारण माना है। कहा भी गया है —**'जन्मान्तरकृतं पापं व्याधिरूपेण ज्ञायते'।**

शातातपीय तन्त्र में कहा गया है कि पूर्वजन्म में किया गया पाप कर्म ही इस जन्म में विभिन्न रोगों के रूप में उत्पन्न होता है।–

पूर्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये।
बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छादिभि: शम:।।
कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा।
मूत्रकृच्छाश्मरीकासा अतिसारभगन्दरौ।।

आचार्य सुश्रुत ने तो कुष्ठ रोग को कर्म जन्म व्याधि का मुख्य उदाहरण माना है। यथा—**ब्रह्मस्त्रीसज्जनवधपरस्वहरणादिभि:।**

कर्मभि: पापरोगस्य प्राहु: कुष्ठस्य सम्भवम्।।

अर्थात् ब्राह्मण, स्त्री, एवं सज्जन पुरुषों की हत्या तथा दूसरों के धन का अपहरण करने जैसे पाप कर्म करने से कुष्ठ रोग होता है।

त्रिशठाचार्य का मत है कि उदररोग, गुदारोग, उन्माद, अपस्मार, पंगुता, कर्णरोग, वाग्दोष, प्रमेह, भगन्दर, प्रदर, वायु विकार, कुष्ट, अन्धता, मुखरोग, नासारोग, अर्श, विपची, व्रण, बाल्मीक, विपर्ष, देहकम्प, पक्षाघात, गलगण्ड, नपुंसकता, रक्तदोष तथा दन्त रोग आदि समस्त रोग गुरुपत्नीगमन, दूसरे के धन का अपहरण एवं ब्रह्महत्या जैसे दुष्कर्म के प्रभाव उत्पन्न होते हैं। यथा—

जठरगुदजोन्मादापस्मृत्यसृगुत्सृतिपंगुता-श्रुतिविकलतावाग्वैकल्यप्रमेहभगन्दरा:।।
प्रदरपवनव्याधिश्वित्रक्षयक्षणदान्धता, तिमिरवदनघ्राणशांसि श्वयथुविपचीव्रणा।।
वल्मीककाकिणिकशंखकपुडरीक-रक्तार्बुदव्रणविसर्पवपु: प्रकम्पा:।
पक्षाभिघातनलगंडगलग्राहश्म, दंडापमानकसमीरणशाकणिताद्या:।।
दन्तामया: स्युरपरद्रविणापहारगुर्वङ्गनागमनविप्रवधादिभिर्ये।
दुष्कर्म भिस्तनुभृतामिह कर्मजास्ते,नोपक्रमेण भिषजामुपयान्ति सिद्धिम्।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य का इस जन्म तथा जन्मान्तर में किया गया अशुभ कर्म ही रोगोत्पत्ति का मुख्य कारण है। ज्योतिषशास्त्र में कर्मजनित व्याधियों का मुख्य कारण उन्माद को माना गया है, इसके कारण, भेद, लक्षण एवं चिकित्सा का यहां विवेचन किया जा रहा है।

उन्माद का मुख्य कारण—

हर्षेच्छामयशोकादेर्विरूद्धाशुचिभोजनात्।

गुरूदेवादिकोपाच्च पंचोन्मादा भवन्त्यथ।।

जब हर्ष, इच्छा, भय एवं शोक की प्रबलता से, विरूद्ध एवं अपवित्र भोजन से तथा गुरु देवता आदि के कोप से उन्माद होता है। आचार्य चरक ने भी उन्माद रोग के यही कारण बताए हैं—

विरूद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरूद्विजानाम्।

उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वा मनोऽभिधातो विषमाश्च चेष्टा:।।

उन्माद के मुख्य भेद—

प्रश्नमार्ग में उन्माद के पांच भेद बतलाये गये हैं— **'त्रिदोषजा: सन्निपाता: आगन्तव इति स्मृता'।**

1.वातजन्य

2. पित्तजन्य

3. कफजन्य

4. सन्निपातजन्य

5. आगन्तुक जन्य

उन्मादों के लक्षण—

प्रश्नमार्ग कार कहते हैं कि हंसना, चिल्लाना, रोना, विलखना, गाना, नाचना, एक जगह पर ना रुकना, हाथ-पैर आदि अंगों को फेंकना पटकना, शरीर का लाल रंग होना, कमजोरी होना, कमजोर होने पर भी बल होना तथा अधिक बड़बड़ाना यह सब वातजन्य उन्माद के लक्षण है। आचार्य चरक ने वातजन्य उन्माद के ये हीं लक्षण बताए हैं।

अवस्थानहासस्मृतिनृत्यगीतवागड्गविक्षेपणरादनानि।

पारूष्य काश्र्यारूणवर्णताश्च जीर्णे बलं चानिलजस्य रूपम्।।

फलित ज्योतिष के ग्रंथों में पित्तजन्य उन्माद के लक्षण इस प्रकार बताए गए हैं। सारंभ(नेत्रों की लालिमा) अमर्ष (असहिष्णुता) विदग्धता, अभिद्रवण (दौडकर चलना) तर्जन (दूसरों को डराना धमकाना) छाया, शीतल वस्तु एवं शीतल जल की इच्छा तथा शरीर का पीला पड़ना ये पित्तजन्य उन्माद के लक्षण है। आचार्य चरक ने भी यही कहा है। ज्योतिष ग्रंथों में बताया गया है कि कफजन्य उन्माद रोगी को स्त्री

तथा एकांत स्थान प्रिय होता है। उसे निद्रा अधिक आती है। और अरूचि रहती है। वह कम कम बोलता है, मुंह से लार बहती है, भोजन के बाद उन्माद का बैग बढ़ जाता है। तथा उसके नाखून सफेद पड़ जाते हैं।

नारीविविक्तप्रियता निद्रारोचौ मनाग्वचः।

लाला छर्दिर्बले भुक्तो नखादिषु च शुक्लता च।।

वात, पित्त, कफ जन्य उन्माद के जो पूर्व लक्षण बताए गए हैं वह सब सन्निपात जन्य उन्माद में भी दिखाई देते हैं। यह चिकित्सा की दृष्टि से वर्ज्य होता है। क्योंकि इसमें एक दोष की चिकित्सा कराने से दूसरा दोष कुपित हो जाता है। अतः यह उन्माद असाध्य होने कारण वर्ज्य कहलाता है । देवता, राक्षस आदि के कोप से उत्पन्न उन्माद को आगंतुक उन्माद कहते हैं। आचार्य चरक का कहना है कि देवता आदि के कोप से उत्पन्न उन्माद जन्मांतर में किए गए अनुचित कर्मों के प्रभाववश यह उन्माद होता है ।

उन्माद का उपचार–

उन्माद के उपचार के बारे में भी ज्योतिष एवं आयुर्वेद के दृष्टिकोण में पूरी तरह समानता है। फलित ज्योतिष के ग्रंथों में बताया गया है कि वातजन्य उन्माद में स्नेहपान, पित्तजन्य उन्माद में विरेचन, कफ जन्य उन्माद में नस्य एवं वमन तथा आगंतुक उन्माद में पूर्वोक्त समस्त क्रियाएं करनी चाहिए।

वातोन्मादे स्नेहपानं पित्तोन्मादे विरेचनम्।

श्लेष्मके नस्यवमनमागन्तुष्वखिलाः क्रियाः।।

उक्त क्रियाओं के अलावा जातक ग्रंथों में सभी प्रकार के उन्माद की एक रामबाण औषधि बताई गई है, वह है कल्याण घृत। यद्यपि उन्माद को ठीक करने के लिए किस औषधि का किस मात्रा में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए यह आयुर्वेद शास्त्र का प्रतिपाद्य विषय है। इसलिए ज्योतिष के ग्रंथों में रोगों की औषधियों की विस्तारपूर्वक चर्चा नहीं की गई है। फिर भी जातक ग्रंथों में विविध प्रसंगों में कुछ रोगों की रामबाण औषधि बताई गई है। आचार्य कल्याण बर्म कहते हैं कि जैसे कल्याण का सेवन उन्माद को नष्ट कर देता है, वैसे ही चंद्रमा से षष्ठ, सप्तम एवं अष्टम स्थान में स्थित शुभ ग्रह समस्त अरिष्टों के प्रभाव को नष्ट कर देता है। आचार्य चरक, सुश्रुत ने पांच प्रकार के उन्मादों के लिए कल्याणधृत एवं महाकल्याणधृत के सेवन को अत्यंत लाभदायक माना है। इस प्रकार फलित ज्योतिष के ग्रंथों में रोग विचार की, रोगों के कारण, लक्षण, भेद एवं उपचार विधि में पर्याप्त समानता पाई जाती है।

3.2 आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग विचार

भगवान धन्वन्तरी के कथनानुसार किसी भी रोगी मनुष्य की चिकित्सा करने से पूर्व उसकी आयु का परीक्षण करना आवश्यक है। क्योंकि आयु के रहते ही चिकित्सा के उपचार द्वारा उसे ठीक किया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र में भी रोग के विषय में जानने से पूर्व उसकी आयु पर विचार किया जाता है।–

आयु: पूर्वं परीक्षेत पश्चाल्लक्षणमादिशेत्।
अनायुषां तु मर्त्यानां लक्षणै: किं प्रयोजतम्।
आयुरेव विशेषेण प्रथमं चिन्त्यतेऽधुना
स्वस्थमुद्दिश्य वा प्रश्न एव वातुरमित्ययम्।।

आयुर्वेद ने जिन रोगों को कर्मजन्य मानकर असाध्य कह दिया तथा ऐसे रोगों के निदान एवं चिकित्सा विधि पर पर्याप्त प्रकाश नहीं डाला उन कर्म जन्य रोगों के होने की संभावना उसके प्रारंभ एवं समाप्ति के काल तथा उसकी चिकित्सा विधि का ज्योतिषशास्त्र में विस्तार से विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र में यह बतलाने में समर्थ है कि किस व्यक्ति के पूर्व अर्जित शुभ कर्मों के प्रभाव किस समय में कौन सा रोग होगा तथा उसका क्या परिणाम निकलेगा। जिस प्रकार दोष जन्य व्याधियों का आयुर्वेदशास्त्र में विस्तार पूर्वक विचार किया गया है उसी प्रकार कर्मजन्य व्याधियों का ज्योतिषशास्त्र में सांगोपांग विवेचन किया गया है। आयुर्वेदशास्त्र में स्वास्थ्य रक्षण, औषधि का सेवन, औषधि का निर्माण एवं शल्य क्रिया को विशेष रुप से बतला कर उसे उपयोगी माना गया है। काल के अतियोग, अयोग एवं मिथ्यायोग से रोग उत्पन्न होता है। अविकृत ऋतु में औषधि का संचय एवं निर्माण करने से ही वह गुणकारी होते है। तथा वह ऋतु विकृति के उत्पन्न रोगों को नष्ट कर देती है। दिन-रात सर्दी-गर्मी बरसात के प्रभाव को ध्यान में रखकर शल्यक्रिया की जाती है। आयुर्वेदशास्त्र में तो यहां तक कहा है कि काल की विशेषताएं अपने स्वभाव से ही दोषों का संचय, प्रकोप, प्रशमन एवं प्रतिकार कर देती है। अतः योग्य चिकित्सक को कॉलकृत आस्थाओं का ध्यान रखकर ही चिकित्सा करनी चाहिए किंतु काल का ज्ञान ज्योतिषशास्त्र द्वारा ही होता है। उपचार के लिए परम उपयोगी दिन-रात पक्ष, मास आदि की जानकारी ज्योतिषशास्त्र पर ही संभव है। अतः ज्योतिषशास्त्र ज्ञान के बिना न तो यथा समय औषधि संचय या औषधि निर्माण ही संभव है और ना ही शल्यिक्रिया या चिकित्सा ही की जा सकती है। अतः जो चिकित्सक आवश्यक ज्योतिष नियमों के ज्ञान पर औषध निर्माण या चिकित्सा करते हैं वही

अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं| वस्तुत: आयुर्वेद ज्योतिषशास्त्र का चचेरा भाई है। ज्योतिषशास्त्र के ज्ञान के द्वारा औषधि की चर्चा, चेष्टा, आकृति सभी लक्षणों एवं उसकी कुंडली में रोगों की विविध योगों के अध्ययन कर यह जाना जा सकता है कि यह रोग की मर्यादा क्या होगी, यह रोग कब ठीक होगा, चिकित्सा करने वाले चिकित्सक के परामर्श एवं प्रचलित औषधियों द्वारा लाभ होगा या नहीं इत्यादि यह कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका समाधान आयुर्वेद शास्त्र में नहीं किया गया है, किंतु ज्योतिष शास्त्र में इसका विस्तार पूर्वक शास्त्रीय विवेचन किया गया है। इसनिए प्राचीन काल में ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान की चिकित्सा में परम उपयोगीता को ध्यान रखकर 'ज्योर्तिवैद्यौ निरन्तरौ' की कहावत प्रचलित है । शास्त्रों के ज्ञान से एक सामान्य व्यक्ति भी अनेक प्रकार के रोगों से बच सकता है क्योंकि अधिकांश रोग सूर्य एवं चंद्रमा के विशेष प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिस प्रकार चंद्रमा अपनी गति स्थिति, कलाओं की ह्रास बृद्धि द्वारा समुद्र के जल में उथल पुथल मचा डालता है। उसी प्रकार यह शरीर के रुधिर प्रवाह में स्नायुमंडल तथा मनोववृत्तियों में अपना प्रभाव डालकर निर्बल मनुष्यों को रोगी बना देता है। अतः ज्योतिष द्वारा चंद्रमा के तत्वों को जानकर अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को वैसे तत्व वाले पदार्थों के सेवन पर अनियंत्रण रखकर मनुष्य स्वयं को रोगों के आक्रमण से बचा सकता है। कालविज्ञान, कर्मफलज्ञान, और सर्वांगशरीरलक्षण एवं प्रत्येक कार्य को करने का उचित समय ये सब ज्योतिषशास्त्र की आयुर्वेद को ऐसी देन है जिसका भारतीय चिकित्सा पद्धति में पग- पग पर उपयोग किया जाता है ।

3.3 रोगों के प्रमुख सिद्धान्त

भारतीय संस्कृति के अनुसार त्रिगुणत्मक प्रकृति के द्वारा निर्मित समस्त जगत् सत्व राज एवं तमोमय है। ज्योतिषशास्त्र में भी सूर्य आदि ग्रहों का इन तीनों गुणों में वर्गीकरण का प्रमुख योगदान रहता है। जिन ग्रहों में सत्व गुण अधिक रहता है। उनकी अमृतमय किरणे, जिन में रजोगुण अधिक रहता है उनकी उभय गुण मिश्रित किरणें, जिनमें तमोगुण अधिक रहता है उनकी बिषम किरणें एवं जिन में तीनों गुणों की अल्पता रहती है उनकी गुण हीन किरणें मानी गई है। ग्रहों के शुभ अशुभ का विभाजन भी इन किरणों के गुणों से ही हुआ है। आकाश में ग्रहों की गति एवं युति से रशियां परस्पर मिलती रहती हैं और एक दूसरे के गुणों को प्रभावित करती रहती हैं। रश्मिविश्लेषण का सिद्धांत बतलाता है कि प्रत्येक ग्रहों की राशियों में स्थान एवं काल विशेष पर उनके गुणों में ह्राय-वृद्धि होते रहती हैं, जिसे ज्योतिषशास्त्र की परिभाषा में स्थान बल, दिक् बल, काल बल एवं चेष्टा

बल कहा गया है। अतः ग्रहों के शुभाशुभत्व का विचार करते समय उनके बलाबल का विचार भी परम आवश्यक माना गया है। ग्रहों की सौम्या एवं क्रूर गति के प्रभाव से ही भूमंडल पर रहने वाले समस्त चराचर पर इनका प्रभाव रहता है। ग्रहों की गति एवं स्थिति की विलक्षणता के कारण यह प्रभाव समस्त पृथ्वी पर एक सा नहीं होता क्योंकि एक कालावच्छेदन दो विभिन्न देशों पर भिन्न-भिन्न ग्रहों के रश्मियां एक जैसी नहीं पड़ती विभिन्न देशों में सूर्य एवं चंद्रमा आदि ग्रहों के उदय अस्त की भिन्नता या देशांतर संस्कार को यहां साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। अत: यह निष्कर्ष आनायास ही समझ में आ जाता है कि स्थान विशेष का ग्रह राशियों के वातावरण की अपनी निजी विशेषता के कारण वहां अत्पन्न जातक अन्य स्थान पर उसी क्षण जन्मे व्यक्ति की अपेक्षा भिन्न स्वभाव, भिन्न आकृति, विलक्षण आदि गुणों से युक्त होता है। उत्पत्ति के समय में जिन जिन रश्मि वाले ग्रहों की प्रधानता होती है जातक का स्वभाव एवं स्वास्थ्य आदि वैसा ही बन जाता है। ग्रह मानव के स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालकर किन किन रोगों को उत्पन्न करते हैं। अब हम इस विषय की ओर चलेंगे।

रोगों का वर्गीकरण—

ज्योतिषशास्त्र के ग्रंथों में रोगों का गंभीरता पूर्वक विचार करने से पहले उनके भेदों का विचार किया गया है। ज्योतिषशास्त्र में रागों को दो प्रकार से माना गया है—

1. सहज

2. आगन्तुक

1. सहज— जन्मजात रोग को सहज रोग कहते हैं। सहज के दो भेद होते हैं— 1. शारीरिक 2. मानसिक रोग लूलापन, लंगड़ापन, अंधत्व, मूकत्व, बधिरत्व, नपुंसकता एवं अधिकांग आदि कुछ शारीरिक रोग जन्मजात होते हैं। जड़ता, उन्माद एवं पागलपन आदि कुछ मानसिक रोग भी जन्मजात होते हैं। इस प्रकार के समस्त जन्मजात रोगों को सहज रोग कहा जाता है।

2. आगन्तुक— जन्म के बाद होने वाले रोगों को आगंतुक लोग कहते हैं। आगंतुक रोग भी दो प्रकार के होते हैं— दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य। शाप, अभिचार, घात, संसर्ग, महामारी एवं दुर्घटना आदि प्रत्यक्ष घटनाओं द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों को दृष्टनिमित्तजन्य रोग कहते हैं। तथा बाधक ग्रह योग के द्वारा उत्पन्न रोग अदृष्टनिमित्तजन्य रोग कहलाते हैं। इन रोगों का कारण पूर्वार्जित कर्म माना गया है। उक्त

दृष्टनिमित्तजन्य एवं अदृष्टनिमित्तजन्य रोगों के भी शारीरिक एवं मानसिक यह दो भेद माने गए हैं।

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोग विचार—

ज्योतिषशास्त्र के अनुसार रोग का विचार हम इस प्रकार करते हैं। षष्टम भाव, षष्टम भाव में स्थित ग्रह, द्वादश भाव एवं अष्टम भाव में स्थित ग्रह और इन भावों के स्वामी ग्रह रोगेश से युक्त या दृष्ट ग्रह एवं भाव से रोग का विचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त पाप ग्रह से युक्त राशियों एवं भाव, नीच राशिगत ग्रह तथा निर्मल ग्रह, लग्न और लग्नेश ग्रह, अवरोही ग्रह, मारक ग्रह एवं बलारिष्ट कारक ग्रह भी रोगों के कारण माने गए हैं। इन ग्रहों के शुभ अशुभ एवं बलाबलत्व के आधार पर रोग का तथा रोगी की चर्या, प्रभाव और कालावधि का निर्धारण किया जाता है। ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों को रोग कारक बनाने वाले निम्नलिखित हेतु बताए गए हैं—

1. लग्न में स्थिति या लग्नेश होना—

ज्योतिषशास्त्र में लग्न को शरीर रूप में माना गया है। अतः लग्न एवं लग्नेश पर पाप ग्रह का प्रभाव शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए अनुकूल नहीं होता है। अतः जब कोई ग्रह लग्न में स्थित हो जाता है तो वह अपनी अस्थि आदि धातुओं का विशेष या पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता है।

लग्न ग्रह	**धातु**
सूर्य	अस्ति
चन्द्रमा	रक्त
मंगल	मांस
बुध	त्वचा
गुरु	वसा
शुक्र	वीर्य
सनी	स्नायु

जब कोई ग्रहण लग्न में स्थित हो या लग्नेश हो तो वह शरीर के उन तत्वों का विशेष प्रतिनिधित्व करता है, जो शरीर में अधिक व्यापक हैं। उदाहरण के लिए जैसे सूर्य- आंख, हृदय एवं हड्डी इन सब का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा मन का, फेफड़ों का, रक्त का प्रतिनिधित्व करते हैं। मंगल मांस एवं मज्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुध वाक्शक्ति, श्रवणशक्ति एवं त्वचा का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुरु उदर, चर्बी का प्रतिनिधित्व करते हैं। शुक्र नेत्र, मूत्र एवं वीर्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। शनि पैर एवं

स्नायु का प्रतिनिधित्व करते हैं। उदाहरण के लिए जैसे कह सकते हैं कि लग्न में स्थिति या लग्नेश होकर सूर्य हड्डी का विशेष प्रतिनिधित्व करेगा क्योंकि शरीर में हड्डी, आंख एवं हृदय की अपेक्षा अधिक व्यापक है। इसी प्रकार चन्द्रमा मन,फेफडे एवं रक्त इन सब को प्रदर्शित करते हैं परंतु लग्न में स्थिति लग्नेश होने पर रक्त का विशेष प्रतिनिधि हो जाता है।

जब कोई ग्रह लग्न में स्थित या लग्नेश होकर निर्बल एवं पाप ग्रह से प्रभावित युक्त होता है तो तब ग्रहों से निम्नोक्त रोगों का अनुमान लगाया जा सकता है—

सूर्य से अस्थि, ज्वर, हड्डी, दुर्बलता आदि। चन्द्रमा से रक्तविकार, रक्तचाप आदि। मंगल से सूखा रोग, बुध से त्वचा रोग, दाद, खाज, खुजली, फुंसी, फोड़ा इत्यादि। गुरु से दुर्बलता, स्थूलता। शुक्र से वीर्य विकार, प्रमेह, मधुमेह, धातु क्षय आदि। शनि स्नायु दुर्बलता, फालिस, लकवा आदि का विचार किया जाता है।

2. नीच राशि, शत्रुराशि में स्थिति या निर्बलता—

नीच राशि शत्रुराशिगत एवं अन्य प्रकार से निर्बल ग्रह शरीर में अपनी धातु की अपेक्षित पूर्ति नहीं कर पाता तथा वह जिन अंगों का प्रतिनिधित्व करता है, उनका भी सम्यक विकास नहीं होने देता है। इस प्रकार का ग्रह अपने तत्व के अभाव द्वारा कारकत्व के अनुसार अंग या धातु में विकार उत्पन्न कर रोग देता है। जैसे—

सूर्य यदि नीच राशि गत या निर्बल ग्रह हो तो पित्त, ज्वर, दाह, नेत्र पीड़ा एवं हृदय दुर्बलता आदि रोगों को जन्म देता है। चन्द्रमा कफरोग, शीतज्वर, उन्माद, जलोदर आदि लोगों को देता है। मंगल जलना, गिरना, गुप्त रोग आदि को देता है। बुध त्रिदोष, चर्म रोग, कर्ण रोग को देते हैं। गुरु सूजन, नितंब एवं पैरों में पीड़ा को देते हैं। शुक्र वीर्यविकार, नेत्र रोग, मुख रोग, मूत्र रोग आदि को देते हैं। शनि दर्द, वायु विकार, स्नायुविकार आदि के देते है।

3. पाप ग्रहों से प्रभावित होना—

पाप ग्रहों के साथ होना या पाप ग्रहों से दृष्ट होना पाप प्रभाव कहलाता है। जिस भाव का प्रतिनिधि ग्रह पाप ग्रहों से दृष्ट है या युत होता है वह अपने भाव से संबंधित अंग रोग उत्पन्न करता है।

4. रोग भाव का प्रतिनिधित्व—

षष्ठ स्थान को रोग का स्थान कहां गया है, अत: षष्ठेश रोग को देने वाला होता है। यह छठे स्थान में स्थित होकर स्वयं की प्रकृति एवं कारकत्व के अनुसार रोग देता है। जैसे—

षष्टम स्थान में स्थित चंद्रमा कफ विकार, शीत ज्वर एवं नेत्र विकार करता है। किन्तु षष्ठेश का किसी अन्य भाव में परिवर्तन योग हो तो वह भाव से संबंध व्यक्ति का अंग को रोक देगा। जैसे- चतुर्थेश से माता को रोग दे सकता है। और अष्टमेश से नेत्र पीड़ा या गुप्तांग से संबंधित रोग को दे सकता है। षष्टम एवं अष्टम स्थान मैं स्थित षष्ठेश विभिन्न ग्रहों से युक्त होकर विभिन्न स्थानों में रोग उत्पन्न करने वाला होता है। जैसे— सूर्य से युक्त हो तो सिर पर, चन्द्रमा से युक्त हो तो मुख में, मंगल से युक्त हो तो कंठ में, बुध से युक्त हो तो नाभि में, गुरु संयुक्त हो तो नासिका में, शुक्र संयुक्त हो तो नेत्र में, शनि संयुक्त हो तो पैर में तथा राहु केतु युक्त होकर पेट में रोग उत्पन्न करता है।

तेषामपि व्रणं वाच्यमादित्येन शिरोव्रणम।
इन्दुना च मुखे कण्ठे भैमेन ज्ञेन नाभिषु
गुरूणा नासिकायां च भृगुणा नयने पदे ।
शनिना राहुणा कुक्षां केतुना च तथा भवेत्।।

5. अष्टम एवं व्ययभाव का प्रतिनिधित्व—

अष्टम एवं स्थान रोग कारक स्थान है। अतः इन के स्वामी ग्रह भी रोग कारक होते हैं। कदाचित इन स्थानों के स्वामी मंगल या शनि हो तो वह और अधिक शक्ति प्रदान कर जिस भाव राशि में अपना युति दृष्टि द्वारा प्रभाव को विनियोग करेंगे, उस राशि भाव संबंधित अंग में रोग उत्पत्ति कर देंगे केवल अष्टमेश या द्वादश इसका प्रभाव रोग के आधारभूत कारणों को ही उत्पन्न करने का कुछ प्रयास कर सकता है, जब तक कि उसमें किसी प्रकार का प्रभाव निहित न हो चुका हो, महर्षि पाराशर के अनुसार सूर्य चंद्रमा एवं लग्नेश अष्टम भाव के स्वामी होने पर भी अशुभ फल दाता नहीं होते हैं। तथा व्ययेश त्रिकोण भाव का स्वामी होने पर शुभ फलदायक हो जाता है। यदि सूर्य और चन्द्रमा व्ययेश होकर त्रिकोणेश से संबंध करें तो वे असुफल नहीं देते। अतः अष्टमेश व्ययेश से रोग देने की क्षमता का निश्चय करते समय यह सब ध्यान में रखना चाहिए।

6. षष्ठ भाव में स्थिति—

छठे भाव को रोग कारक माना गया है। यह ग्रह जिस राशि एवं भाव का स्वामी हो या कारक हो वह राशि और भाव काल पुरुष के जिस अंग में पढ़ती हो अथवा जिस अंग आदि का कार्य को उस अंग में रोग उत्पत्ति करता है। किंतु यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि ऐसा ग्रह जब पाप प्रभाव में हो तभी रोग उत्पन्न कर सकता है। शुभ प्रभाव

होने पर किसी भी प्रकार के रोग उत्पन्न नहीं होती है। किसी भाव का स्वामी छठे, आठवें, बारहवें भाव में स्थित होकर उस भाव के शुभ फल को नष्ट कर देता है। जैसे छठा भाव शारीरिक प्रगति, उन्नति एवं पुष्टि सब को रोकता है। यह दुर्बलता वश रोग का कारक हो जाता है। ज्योतिषी ग्रंथों में कहा गया है कि पंचम भाव का स्वामी छठे भाव में होकर पुत्र कारक गुरु एवं सूर्य से युक्त हो तो उसकी पत्नी को गर्वस्राव होता है। अथवा संतान होने में कष्ट अनुभूति होती है। आशय स्पष्ट है कि संतति भाव का स्वामी एवं कारक यह दोनों जब छठे भाव में रहेंगे तब गर्भ की पुष्टि या वृद्धि होने में कठिनाइयां होंगी अपितु उपर्युक्त सिद्धांत अनुसार पंचम भाव का शुभ फल नष्ट होने से इस प्रकार की संभावना बनती है।

7. मारकत्व का प्रभाव—

ज्योतिषशास्त्र के सभी ग्रंथों में बालारिष्ट अर्थात् बाल्यावस्था में अकाल मृत्यु का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस अरिष्ट योग के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं—

1. लग्न या लग्नेश का निर्मल होना— लग्न या लग्नेश के बलाबल से स्वास्थ्य, शारीरिक वृद्धि एवं आयु का विचार करते हैं और इन दोनों की निर्बलता से मानव को जीवन में मिलने की संभावना नष्ट हो जाती है।

2. अष्टम भाव एवं अष्टमेश के निर्बल होने पर— ज्योतिषशास्त्र में सभी आचार्यों ने अष्टम स्थान को आयु स्थान माना है अतः इसकी निर्बलता भी जीवन के लिए हानिकारक है।

3. चन्द्रमा के क्षीण एवं पाप प्रभाव में होने पर— चंद्रमा बाल्यावस्था का प्रतिनिधि ग्रह है यह पाप प्रभाव द्वारा व्यक्त करता है कि आयु में अवश्य किसी प्रकार का कष्ट होगा।

ग्रहों / भाव के अनुसार रोग विचार—

ग्रह भाव के अनुसार रोग विचार को निम्न तालिका के माध्यम से समझते हैं—

सूर्य— पित्त रोग, उष्ण ज्वर, शरीर जलन, मिर्गी, हृदय रोग, नेत्र रोग, नाभि से नीचे प्रदेश या कोख में पीड़ा, चर्म रोग, अग्नि रोग, ज्वर वृद्धि, अतिसार, चित्त व्याकुलता, शस्त्र एवं व्रण से कष्ट, शिर में पीड़ा आदि।

चन्द्रमा— निद्रा रोग, आलस्य, कफ, अतिसार, मंदाग्नि, अरूचि, पीलिया, रक्त विकार, पांडू रोग, जलोदर, स्त्री जन्य रोग, प्रमेह, वाताधिक्य, मानसिक रोग आदि।

मंगल— पित्त ज्वर, जलन, विषमय, तृष्णा, नेत्र रोग, अपस्मार, खुजली , रक्त विकार, रक्तचाप आदि।

बुध— गले का रोग, नेत्र रोग, भ्रांति, नासिका रोग, त्रिदोष ज्वर, चर्म रोग, पीलिया, खुजली, दाद, उदर विकार, गुप्त रोग, वायु विकार, कुष्ठ, मंदाकिनी, चेचक आदि।

गुरु— पेट संबंधित रोग, टाइफाइड, कर्ण रोग, कफ रोग, ज्वर, सर्दी, हर्निया आदि।

शुक्र— पांडू, कफ एवं वायु विकार, नेत्र रोग, मोतियाबिंद रोग, मूत्र रोग, वीर्य की कमी, संभोग, स्त्री जन्य रोग, मधुमेह, कामजन्य पीड़ा, स्वप्नदोष आदि।

शनि— मानसिक रोग, बौद्धिक रोग, उष्णता रोग, गठिया रोग, हर्निया रोग, गुप्तेन्द्रि में पीड़ा रोग, पीलिया, फालिस, कैंसर रोग आदि।

राहु — कुष्ठ रोग, मानसिक रोग, हृदय रोग, पैर में चोट, कृमि रोग आदि।

केतु — श्वेत कुष्ठ रोग, चर्म रोग, पांडु रोग, मसूरी का रोग, जलोदर रोग आदि।

ग्रहयोग के अनुसार रोग विचार—

ग्रह योग द्वारा रोग के उत्पत्ति काल का ज्ञान होता है। उसके द्वारा जीवन भर रहने वाले रोगों की भी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार ग्रह योग द्वारा रोगोत्पत्ति को इस प्रकार जानने का प्रयास करते हैं—

I. षष्टम भाव एवं षष्ठेश पापयुक्त हो तथा शनि राहु से युक्त दृष्ट हो तो मनुष्य जीवन भर रोगी रहता है।
II. षष्ट भाव में मंगल अष्टम भाव में षष्ठेश हो तो छठे या आठवें वर्ष में ज्वर होता है।
III. षष्ठ भाव में गुरु हो तथा चंद्रमा गुरु की राशि में हो तो 19 या 22 वर्ष में कुष्ठ रोग होता है।
IV. षष्टम भाव में राहु, केतु केन्द्र में शनि एवं अष्टम भाव में लग्नेश हो तो 26 वर्ष में क्षय रोग होता है। द्वादशेश षष्ठ में तथा षष्ठेश द्वादश में हो तो 29 या 30 वें वर्ष में गुल्म रोग होता है।
V. शनि के साथ चन्द्रमा षष्ठ स्थान में हो तो 45 वर्ष में रक्त कुष्ठ रोग होता है।
VI. लग्नेश लग्न में तथा शनि षष्ठ भाव में हो तो 49 वर्षों में बात रोग होता है।

राशियों के अनुसार रोग विचार—

मेषादि राशियों में पाप ग्रह प्रभाववश निम्नलिखित रोगों की उत्पत्ति होती है—

मेष— पित्त ज्वर, तृष्णा, दाह, लू लगना, जठराग्नि संबंधी रोग आदि।

वृष— त्रिदोष जन्य रोग, सन्निपात, नपुंसकता रोग आदि।

मिथुन— श्वास,कास, दमा, कामुकता आदि।

कर्क— पागलपन, उन्माद, वात रोग, अरुचि आदि।

सिंह— ज्वर, स्फोट, स्नायविक तनाव आदि।

कन्या— स्त्रियों के कारण गुप्त रोग आदि।

तुला— सन्निपात, प्रमेह, शरीर का संतुलन न बनने कारण गिरना आदि।

वृश्चिक— पीलिया, पांडु रोग आदि।

धनु— पेड़ से गिरना, पैर एवं कमर में चोट आदि।

मगर— पेट दर्द, पेट में फोड़ा, अरुचि आदि।

कुंभ— खासी, ज्वार, कप, क्षय रोग आदि।

मीन— जलोदर, काफ, शीतविकार आदि।

3.4 रोगोत्पत्ति का समयादि परिज्ञान

रोग की उत्पत्ति समयादि का ज्ञान व्यक्ति के जन्म से अवसान पर्यंत तक चलने वाले रोगों के प्रारंभिक काल का विचार नहीं किया जाता। इन रोगों का विचार ग्रह योग के आधार पर किया जाता है। सभी रोगों के होने की संभावना का विचार रोग कारक ग्रह की दशा, अंतर्दशा, गोचर ग्रह की स्थिति के आधार पर किया जाता है। लम्बे समय तक चलने वाले रोग को ग्रहों की महादशा एवं अंतर्दशा के आधार पर जाना जाता है एवं अल्पकालीन या कम समय के लिए रोग की जानकारी के लिए उनकी प्रत्यंतर एवं सूक्ष्म दशा के आधार पर उन्हें जाना जाता है। ज्योतिषशास्त्र में विंशोत्तरी महादशा की प्रधानता है। जिससे जातक की भावी घटनाओं शुभ अशुभ का विचार हम कर पाते हैं।

दशाओं के आधार पर रोगोत्पत्ति—

ज्योतिषशास्त्र में ग्रहों के शुभाशुभ फल का समय जानने के लिए विंशोत्तरी महादशा की प्रधानता है। मारकेश का निर्णय भी विंशोत्तरी दशा से ही किया जाता है, जो रोगों के साध्यत्व एवं असाध्यत्व के निर्णय में अहम भूमिका प्रस्तुत करता है। अतः रोग की उत्पत्ति में सम्भावित समय का विचार विंशोत्तरी दशा के अनुसार करेंगे। इस दशा में आयु का अधिकतम मान 120 वर्ष मानकर ग्रहों की दशा वर्षों का विभाजन किया गया है। जो इस प्रकार है— सूर्य की दशा 6 वर्ष, चंद्रमा की दशा 10 वर्ष, मंगल की 7 वर्ष, राहु के 18 वर्ष, बृहस्पति की 16 वर्ष, शनि की 19 वर्ष, बुध की 17 वर्ष, केतु की 7 वर्ष, शुक्र की 20 वर्ष माना गया है।

इन दशा का ज्ञान जन्म नक्षत्र के आधार पर किया जाता है। इसलिए कृत्तिका, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने पर सूर्य की दशा, रोहिणी, हस्त, श्रवण नक्षत्र में जन्म होने से चंद्रमा की दशा, मृगशिरा, चित्रा, धनिष्ठा नक्षत्र में जन्म होने से मंगल की दशा, आर्द्रा स्वाति, शतभिषा नक्षत्र में जन्म होने से राहु की दशा, पुनर्वसु, विशाखा, पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने से गुरु की महादशा, पुष्य, अनुराधा, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में जन्म होने से शनि की महादशा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, रेवती नक्षत्र में जन्म होने से केतु की महादशा तथा भरणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में जन्म होने से शुक्र की महादशा होती है।

रोगोत्पत्ति का समय—

रोग कारक ग्रह से ही संबंधित रोग की समुचित जानकारी को हम जान सकते हैं। ग्रह रोगों को उत्पन्न नहीं करते अपितु उत्पन्न होने वाले रोगों की सूचना देते हैं। अतः प्रत्येक ग्रह के ग्रह योग के आधार पर संबंधित रोग कारक ग्रह के द्वारा उस रोग की उत्पत्ति का समय या काल का निर्धारण किया जाता है। रोगोत्पत्ति के संभावित समय का निर्धारण दो प्रकार से किया जाता है— 1. योग द्वारा और 2. दशा द्वारा। योग में बतलाए गये वर्ष में रोगोंत्पत्ति के काल का निर्धारण दशा फल नियमों की अपेक्षा रखता है। दशा का फल दो प्रकार का होता है। 1. साधारण तथा 2. विशिष्ट। ग्रहस्थान, स्थिति बल एवं योग के कारण जो फल देते हैं वह विशिष्ट फल कहलाता है। साधारण फल वह है जिसकी अनुभूति मात्र होती है। जबकि विशिष्ट फल जीवन में विलक्षण घटनाओं को घटित करता है। रोग जीवन में घटित होने वाली वह विशिष्ट घटना है जो मनुष्य के जीवन में उथल-पुथल मचा सकती है। अत: रोगोत्पत्ति को साधारण फल न मानकर विशिष्ट फल ही मानना चाहिए।

ग्रह दशा के अनुसार रोगोत्पत्ति—

रोगेश, अष्टमेश, मारकेश नीचराशिगत ग्रह, उच्चराशिगत ग्रह, निर्बल ग्रह, पापदृष्ट ग्रह, क्रूर ग्रह, रोग कारक होते हैं। जीवन में जब-जब इन ग्रहों की दशा, अंतर्दशा, प्रत्यंतर दशा, सूक्ष्मदशा आती है, तब तब मनुष्य को रोग तुल्य कष्ट होता है या रोग होता है। किस-किस ग्रह की दशा में कौन-कौन सा रोग हो सकता है यह जानकारी के को हम इस प्रकार से जानने का प्रयास करेंगे।

सूर्य की महादशा में होने वाले रोग—

सामान्यतया सूर्य की दशा में ज्वर, पित्त प्रकोप एवं सिरदर्द होता है। किन्तु वह किसी कारण से रोग कारक हो तो विविध स्थिति में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। यदि सूर्य परम नीच राशि गत हो तो विपत्ति एवं मृत्यु तुल्य रोग देता है। अतिशत्रु राशिगत सूर्य की दशा में शारीरिक कष्ट होता है। शत्रु राशिगत सूर्य की महादशा में अग्नि एवं चोर भय होता है। नीचग्रह से युक्त सूर्य की दशा में मनोविकार पापदृष्ट सूर्य की दशा में कृशता, कमजोरी। छठे स्थान में स्थित सूर्य की दशा में गोल्म, अतिसार प्रमेह आदि रोग होते हैं। द्वादशभावस्त सूर्य की दशा में विष भय होता है।

चन्द्रमा की महादशा में होने वाले रोग—

चन्द्रमा की महादशा में प्रायः सर्दी, जुकाम, खांसी, मानसिक अस्थिरता एवं कामजन्य रोग होते हैं। किन्तु जब यह किसी कारण से रोग कारक हो जाते हैं तो विविध रोगों को उत्पन्न करते हैं। जैसे—नीचांशगत चन्द्रमा की महादशा में मानसिक विकार एवं नेत्र रोग होते हैं। अतिशत्रुराशि गत चन्द्रमा की दशा में कलह एवं उद्वेग होता है। नीच राशि गत चन्द्रमा की दशा में अग्निभय एवं मनोव्यथा। अष्टमभावस्थ चन्द्रमा की दशा में जलभय, जलोदर रोग होता हैं।

मंगल की महादशा में होने वाले रोग—

मंगल की दशा में सामान्यतः रक्त विकार, चोट, दुर्घटना, लड़ाई तथा राजा से शारीरिक दण्ड मिलता है। किंतु जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तो विभिन्न स्थितियों में अपनी दशा के समय विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है। नीचस्थ मंगल की दशा में चोरपीडा, अग्निभय। शत्रु राशि गत मंगल की दशा में प्रमाद, गुदा रोग, नेत्र रोग। नीच ग्रह गत मंगल की दशा में मानसिक विकार, केंद्रस्थ मंगल की दशा में विषजन्य रोग। सप्तमस्थ मंगल की दशा में गुदा रोग, पंचमस्त मंगल की दशा में जड़ता एवं बुद्धि भ्रम, अष्टमस्त मंगल की दशा में विस्फोट, विसर्ग, बक्री मंगल की दशा में सर्पदंश आदि रोग होते हैं।

बुध की महादशा में होने वाले रोग—

बुध की दशा में सामान्यतः ज्वर, चर्मरोग एवं मानसिक अस्थिरता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तो इसकी दशा में अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे— शत्रु राशि गत बुध की दशा में विपत्ति, समराशिगत बुध की दशा में फोड़ा, फुंसी, नीचराशिगत बुध की दशा में मानसिक रोग, पापदृष्ट बुध की दशा में कृच्छ रोग,

तृतीयभावस्थ बुध की दशा में जड़ता, गुल्म रोग, पंचमस्थ बुध की दशा में चिंता, सिरदर्द, द्वादशस्थ बुध की दशा में अंगों के विकलता, मृत्यु आदि रोग होते हैं।

गुरू की महादशा में होने वाले रोग—

गुरु की दशा में सामान्यतः उदर विकार, स्थूलता बढ़ जाती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोग कारक बन जाता है, तो अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। जैसे— नीचग्रहगत गुरु की दिशा में मानसिक रोग, निचांशयुत गुरु की दशा में गुल्म रोग, अस्तंगत गुरु की दशा में अनेक रोग, षष्ठस्थ गुरु की दशा में वात रोग, उदर रोग होते हैं।

शुक्र की महादशा में होने वाले रोग—

शुक्र की दशा में सामान्यता वीर्यरोग, कामरोग एवं स्त्रीजन्य रोगों के होने की संभावना रहती है। किन्तु जब यह रोग कारक हो जाता है तो विभिन्न स्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न करता है। जैसे—परमनीचगत शुक्र की दशा में मानसिक रोग, अतिशत्रुराशिगत शुक्र की दशा में नेत्र रोग, समराशिगत शुक्र की दशा में प्रमेह, गुल्म, गुदा रोग, सप्तमस्त शुक्र की दशा में प्रमेह, षष्ठस्थ शुक्र की दशा में शस्त्र से चोट लगने का भय रहता है।

शनि की महादशा में होने वाले रोग—

शनि की दशा में सामान्यतया वायु विकार, व्यग्रता एवं व्यग्रता रहती है। किन्तु जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तब वह विभिन्न परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोग उत्पन्न करता है। जैसे— अतिशत्रुराशिगत शनि की दशा में चोर एवं राजा से भय, शत्रुराशिगत शनि की दशा में कृशता, समराशिगत शनि की दशा में क्षय, वातरोग, पित्तरोग। लग्नस्थ शनि की दशा में कृशता, सिरदर्द। तृतीयस्थ शनि की दशा में मानसिक रोग, सप्तमस्तराशिगत शनि की दशा में जड़ता, मूत्रकृच्छ रोग होते हैं।

राहु की महादशा में होने वाले रोग—

राहु की दशा के समय में सामान्यतया उदर विकार, मानसिक उद्वेग, छोटी मोटी बीमारी चलती रहती है। इसकी दशा में शत्रुओं के प्रपंच एवं अभिचार जन्य रोग भी होते हैं। जब यह किसी कारणवश रोग कारक हो जाता है तब विविध स्थितियों में निम्न रोगों को उत्पन्न करता है। जैसे— नीचराशिस्थ राहु की दशा में विषभय, लग्नस्थ राशि राहु की दशा में विष, अग्नि एवं शस्त्र से भय, द्वितीयस्थ राहु की दशा में मानसिक विकार, चतुर्थ राहु की दशा में मनोव्यथा, पंचमस्थ राहु की दशा में बुद्धिभ्रम, सप्तमस्त राहु की दशा में सर्पदंश, पापदृष्ट राहु की दशा में अग्निभय होता है।

केतु की महादशा में होने वाले रोग—

केतु की दशा के समय में सामान्यतया भ्रम,भय,एवं मन में चंचलता रहती है। किन्तु जब किसी कारणवश रोगकारक बन जाता है, तब विभिन्न परिस्थितियों में अपनी दशा में विविध रोगों को उत्पन्न ना करता है। जैसे— लग्नगत केतु की दशा में ज्वर, अतिसार, प्रमेह, विस्फोट, हैजा। द्वितीय भाव में केतु की दशा में मानसिक व्यथा, पंचम भावगत केतु की दशा में बुद्धिभ्रम, सप्तमभावगत केतु की महादशा में मूत्रकृच्छ, मानसिक रोग, दशमभावगत केतु की महादशा में मन में जड़ता, अदिविकार, द्वादश भाव में केतु की दशा में नेत्र विकार,पापदृष्ट केतु की दशा में चर्म रोग आदि होते हैं।

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको ज्ञात हुआ है कि रोगों के मूल कारण क्या है। अत: इस इकाई के अध्ययन के बाद आप चिकित्सा ज्योतिष के मूल सिद्धान्त को विविध मतों का अवलोकन करते हुये रोगों के मुख्य कारण साथ ही आयुर्वेद एवं ज्योतिषी दृष्टि में रोग, रोगोत्पेत्ति का समयादि परिज्ञान आदि का अध्ययन इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

3.6 बोध प्रश्न

1. आयुर्वेद के मतानुसार रोगों की उत्पत्ति का मूल कारण बताया गया है।

क. कर्म को

ख. दोष प्रकोप को

ग. क एवं ख दोनों

घ. भाग्य को

2. प्रश्नमार्ग में उन्माद के कितने भेद बतलाये गये हैं।

क. पांच भेद

ख. चार भेद

ग. तीन भेद

घ. दश भेद

3. ज्योतिषशास्त्र में रागों को कितने प्रकार का माना गया है।

क. दो प्रकार

ख एक प्रकार

ग. तीन प्रकार

घ. चार प्रकार

4. राशियां कितनी होती हैं।

क. 10

ख. 12

ग. 9

घ. 7

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चरक संहिता, विद्योतिनी टीका, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

2. प्रश्नमार्ग,शुकदेव चतुर्वेदी, रंजन पब्लिकेशन, दिल्ली।

3. बृहत्संहिता, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

4. भरतीय ज्यातिष, डा.नेमिचन्द्र शास्त्री,भरतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली।

5. ज्योतिष में रोगविचार,डा.शुकदेव चतुर्वेदी,मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. ग

2. क

3. क

4. ख

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रह दशा के अनुसार रोगोत्पत्ति को विस्तार से वर्णन करें।
2. रोगों के मुख्य कारण पर विस्तार पूवर्क चर्चा करें।